



प्रेमचंद निर्मला



हिंदीकोश

www.hindikosh.in

Nirmala

By Premchand

यह पुस्तक प्रकाशनाधिकार मुक्त है क्योंकि इसकी प्रकाशनाधिकार अवधि समाप्त हो चुकी है।

This work is in the public domain in India because its term of copyright has expired.

यूनीकोड संस्करण: संजय खत्री. 2012

Unicode Edition: Sanjay Khatri, 2012

आवरण चित्र: समीरा एवं विकिपीडिया (प्रेमचंद)

Cover image: Samira and Wikipedia.org (Premchand).

हिंदीकोश

Hindikosh.in

<http://www.hindikosh.in>

प्रेमचंद

निर्मला

यों तो बाबू उदयभानुलाल के परिवार में बीसों ही प्राणी थे, कोई ममेरा भाई था, कोई फुफेरा, कोई भांजा था, कोई भतीजा, लेकिन यहां हमें उनसे कोई प्रयोजन नहीं, वह अच्छे वकील थे, लक्ष्मी प्रसन्न थीं और कुटुम्ब के दरिद्र प्राणियों को आश्रय देना उनका कर्तव्य ही था। हमारा सम्बन्ध तो केवल उनकी दोनों कन्याओं से है, जिनमें बड़ी का नाम निर्मला और छोटी का कृष्णा था। अभी कल दोनों साथ-साथ गुड़िया खेलती थीं। निर्मला का पन्द्रहवां साल था, कृष्णा का दसवां, फिर भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों चंचल, खिलाड़िन और सैर-तमाशे पर जान देती थीं। दोनों गुड़िया का धूमधाम से ब्याह करती थीं, सदा काम से जी चुराती थीं। मां पुकारती रहती थी, पर दोनों कोठे पर छिपी बैठी रहती थीं कि न जाने किस काम के लिए बुलाती हैं। दोनों अपने भाइयों से लड़ती थीं, नौकरों को डांटती थीं और बाजे की आवाज सुनते ही द्वार पर आकर खड़ी हो जाती थीं पर आज एकाएक एक ऐसी बात हो गई है, जिसने बड़ी को बड़ी और छोटी को छोटी बना दिया है। कृष्णा यही है, पर निर्मला बड़ी गम्भीर, एकान्त-प्रिय और लज्जाशील हो गई है। इधर महीनों से बाबू उदयभानुलाल निर्मला के विवाह की बातचीत कर रहे थे। आज उनकी मेहनत ठिकाने लगी है। बाबू भालचन्द्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवन मोहन सिन्हा से बात पक्की हो गई है। वर के पिता ने कह दिया है कि आपकी खुशी ही दहेज दें, या न दें, मुझे इसकी परवाह नहीं; हां, बारात में जो लोग जायें उनका आदर-सत्कार अच्छी तरह होना चाहिए, जिसमें मेरी और आपकी जग-हंसाई न हो। बाबू उदयभानुलाल थे तो वकील, पर संचय करना न जानते थे। दहेज उनके सामने कठिन समस्या थी। इसलिए जब वर के पिता ने स्वयं कह दिया कि मुझे दहेज की परवाह नहीं, तो मानां उन्हें आंखें मिल गईं। डरते थे, न जाने किस-किस के सामने हाथ फैलाना पड़े, दो-तीन महाजनों को ठीक कर रखा था। उनका अनुमान था कि हाथ रोकने पर भी बीस हजार से कम खर्च न होंगे। यह आश्वासन पाकर वे खुशी के मारे फूले न समाये।

इसकी सूचना ने अज्ञान बलिका को मुंह ढांप कर एक कोने में बिठा रखा है। उसके हृदय में एक विचित्र शंका समा गई है, रोम-रोम में एक अज्ञात भय का संचार हो गया है, न जाने क्या होगा। उसके मन में वे उमंगें नहीं हैं, जो युवतियों की आंखों में तिरछी चितवन बनकर, ओंठों पर मधुर हास्य बनकर और अंगों में आलस्य बनकर प्रकट होती है। नहीं वहां अभिलाषाएं नहीं हैं वहां केवल शंकाएं, चिन्ताएं और भीरु कल्पनाएं हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है।

कृष्णा कुछ-कुछ जानती है, कुछ-कुछ नहीं जानती। जानती है, बहन को अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे, द्वार पर बाजे बजेंगे, मेहमान आयेंगे, नाच होगा - यह जानकर प्रसन्न है और यह भी जानती है कि बहन सबके गले मिलकर रोयेगी, यहां से रो-धोकर विदा हो जायेगी, मैं अकेली रह जाऊंगी - यह जानकर दुःखी है, पर यह नहीं जानती कि यह इसलिए हो रहा है, माताजी और पिताजी क्यों बहन को इस घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं। बहन ने तो किसी को कुछ नहीं कहा, किसी से लड़ाई नहीं की, क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी ये लोग निकाल देंगे? मैं भी इसी तरह कोने में बैठकर रोऊंगी और किसी को मुझ पर दया न आयेगी? इसलिए वह भयभीत भी हैं।

संध्या का समय था, निर्मला छत पर जानकर अकेली बैठी आकाश की और तृषित नेत्रों से ताक रही थी। ऐसा मन होता था पंख होते, तो वह उड़ जाती और इन सारे झंझटों से छूट जाती। इस समय बहुधा दोनों बहनें कहीं सैर करने जाया करती थीं। बग्घी खाली न होती, तो बगीचे में ही टहला करतीं, इसलिए कृष्णा उसे खोजती फिरती थी, जब कहीं न पाया, तो छत पर आई और उसे देखते ही हंसकर बोली - तुम यहां आकर छिपी बैठी हो और मैं तुम्हें ढूँढती फिरती हूं। चलो, बग्घी तैयार करा आयी हूं।

निर्मला ने उदासीन भाव से कहा - तू जा, मैं न जाऊंगी।

कृष्णा - नहीं मेरी अच्छी दीदी, आज जरूर चलो। देखो, कैसी ठंडी-ठंडी हवा चल रही है।

निर्मला - मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।

कृष्णा की आंखें डबडबा आईं। कांपती हुई आवाज से बोली- आज तुम क्यों नहीं चलतीं मुझसे क्यों नहीं बोलतीं क्यों इधर-उधर छिपी-छिपी फिरती हो? मेरा जी अकेले बैठे-बैठे घबड़ाता है। तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊंगी। यहीं तुम्हारे साथ बैठी रहूंगी।

निर्मला - और जब मैं चली जाऊंगी तब क्या करेगी? तब किसके साथ खेलेगी और किसके साथ घूमने जायेगी, बता?

कृष्णा - मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। अकेले मुझसे यहां न रहा जायेगा।

निर्मला मुस्कराकर बोली - तुझे अम्मा न जाने देंगी।

कृष्णा - तो मैं भी तुम्हें न जाने दूंगी। तुम अम्मा से कह क्यों नहीं देती कि मैं न जाऊंगी।

निर्मला - कह तो रही हूं, कोई सुनता है!

कृष्णा - तो क्या यह तुम्हारा घर नहीं है?

निर्मला - नहीं, मेरा घर होता, तो कोई क्यों जबर्दस्ती निकाल देता?

कृष्णा - इसी तरह किसी दिन मैं भी निकाल दी जाऊंगी?

निर्मला - और नहीं क्या तू बैठी रहेगी! हम लड़कियां हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता।

कृष्णा - चन्दर भी निकाल दिया जायेगा?

निर्मला - चन्दर तो लड़का है, उसे कौन निकालेगा?

कृष्णा - तो लड़कियां बहुत खराब होती होंगी?

निर्मला - खराब न होती, तो घर से भगाई क्यों जाती?

कृष्णा - चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भगाता। हम-तुम तो कोई बदमाशी भी नहीं करतीं।

एकाएक चन्दर धम-धम करता हुआ छत पर आ पहुँचा और निर्मला को देखकर बोला - अच्छा आप यहां बैठी हैं। ओहो! अब तो बाजे बजेंगे, दीदी दुल्हन बनेंगी, पालकी पर चढ़ेंगी, ओहो! ओहो!

चन्दर का पूरा नाम चन्द्रभानु सिन्हा था। निर्मला से तीन साल छोटा और कृष्णा से दो साल बड़ा।

निर्मला-चन्दर, मुझे चिढ़ाओगे तो अभी जाकर अम्मा से कह दूंगी।

चन्द्र - तो चिढ़ती क्यों हो तुम भी बाजे सुनना। ओ हो-हो! अब आप दुल्हन बनेंगी। क्यों किशनी, तू बाजे सुनेगी न वैसे बाजे तूने कभी न सुने होंगे।

कृष्णा - क्या बैण्ड से भी अच्छे होंगे?

चन्द्र - हां-हां, बैण्ड से भी अच्छे, हजार गुने अच्छे, लाख गुने अच्छे। तुम जानो क्या एक बैण्ड सुन लिया, तो समझने लगीं कि उससे अच्छे बाजे नहीं होते। बाजे बजानेवाले लाल-लाल वर्दियां और काली-काली टोपियां पहने होंगे। ऐसे खबूसूरत मालूम होंगे कि तुमसे क्या कहूं आतिशबाजियां भी होंगी, हवाइयां आसमान में उड़ जायेंगी और वहां तारों में लगेंगी तो लाल, पीले, हरे, नीले तारे टूट-टूटकर गिरेंगे। बड़ा बजा आयेगा।

कृष्णा - और क्या-क्या होगा चन्दन, बता दे मेरे भैया?

चन्द्र - मेरे साथ घूमने चल, तो रास्ते में सारी बातें बता दूं। ऐसे-ऐसे तमाशे होंगे कि देखकरतेरी आंखें खुल जायेंगी। हवा में उड़ती हुई परियां होंगी, सचमुच की परियां।

कृष्णा - अच्छा चलो, लेकिन न बताओगे, तो मारूंगी।

चन्द्रभानू और कृष्णा चले गए, पर निर्मला अकेली बैठी रह गई। कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ। कृष्णा, जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी निठुर हो गई। अकेली छोड़कर चली गई। बात कोई न थी, लेकिन दुःखी हृदय दुखती हुई आंख है, जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है। निर्मला बड़ी देर तक बैठी रोती रही। भाई-बहन, माता-पिता, सभी इसी भांति मुझे भूल जायेंगे, सबकी आंखें फिर जायेंगी, फिर शायद इन्हें देखने को भी तरस जाऊं।

बाग में फूल खिले हुए थे। मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे। निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी-पड़ी सो गई और आंख लगते ही उसका मन स्वप्न-देश में, विचरने लगा। क्या देखती है कि सामने एक नदी लहरें मार रही है और वह नदी के किनारे नाव की बाठ देख रही है। सन्ध्या का समय है। अंधेरा किसी भयंकर जन्तु की भांति बढ़ता चला आता है। वह घोर चिन्ता में पड़ी हुई है कि कैसे यह नदी पार होगी, कैसे पहुंचूंगी! रो रही है कि कहीं रात न हो जाये, नहीं तो मैं अकेली यहां कैसे रहूंगी। एकाएक उसे एक सुन्दर नौका घाट की ओर आती दिखाई देती है। वह खुशी से उछल पड़ती है और ज्योंही नाव घाट पर आती है, वह उस पर चढ़ने के लिए बढ़ती है, लेकिन ज्योंही नाव के पटरे पर पैर रखना चाहती है, उसका मल्लाह बोल उठता है - तेरे लिए यहां जगह नहीं है! वह मल्लाह की खुशामद करती है, उसके पैरों पड़ती है, रोती है, लेकिन वह यह कहे जाता है, तेरे लिए यहां जगह नहीं है। एक क्षण में नाव खुल जाती है। वह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगती है। नदी के निर्जन तट पर रात भर कैसे रहेगी, यह सोच वह नदी में कूद कर उस नाव को पकड़ना चाहती है कि इतने में कहीं से आवाज आती है - ठहरो, ठहरो, नदी गहरी है, डूब जाओगी। वह नाव तुम्हारे लिए नहीं है, मैं आता हूं, मेरी नाव में बैठ जाओ। मैं उस पार पहुंचा दूंगा। वह भयभीत होकर इधर-उधर देखती है कि यह आवाज कहां से आई? थोड़ी देर के बाद एक छोटी-सी डोंगी आती दिखाई देती है। उसमें न पाल है, न पतवार और न मस्तूल। पेंदा फटा हुआ है, तख्ते

टूटे हुए, नाव में पानी भरा हुआ है और एक आदमी उसमें से पानी उलीच रहा है। वह उससे कहती है, यह तो टूटी हुई है, यह कैसे पार लगेगी? मल्लाह कहता है - तुम्हारे लिए यही भेजी गई है, आकर बैठ जाओ! वह एक क्षण सोचती है - इसमें बैठूं या न बैठूं? अन्त में वह निश्चय करती है - बैठ जाऊं। यहां अकेली पड़ी रहने से नाव में बैठ जाना फिर भी अच्छा है। किसी भयंकर जन्तु के पेट में जाने से तो यही अच्छा है कि नदी में डूब जाऊं। कौन जाने, नाव पार पहुंच ही जाये। यह सोचकर वह प्राणों की मुट्ठी में लिए हुए नाव पर बैठ जाती है। कुछ देर तक नाव डगमगाती हुई चलती है, लेकिन प्रतिक्षण उसमें पानी भरता जाता है। वह भी मल्लाह के साथ दोनों हाथों से पानी उलीचने लगती है। यहां तक कि उनके हाथ रह जाते हैं, पर पानी बढ़ता ही चला जाता है, आखिर नाव चक्कर खाने लगती है, मालूम होती है - अब डूबी, अब डूबी। तब वह किसी अदृश्य सहारे के लिए दोनों हाथ फैलाती है, नाव नीचे जाती है और उसके पैर उखड़ जाते हैं। वह जोर से चिल्लाई और चिल्लाते ही उसकी आंखें खुल गईं। देखा, तो माता सामने खड़ी उसका कन्धा पकड़कर हिला रही थी।

बाबू उदयभानुलाल का मकान बाजार बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े और कमरे में दर्जी की सुईयां चल रही हैं। सामने नीम के नीचे बढ़ई चारपाइयां बना रहा है। खपरैल में हलवाई के लिए भट्ठा खोदा गया है। मेहमानों के लिए अलग एक मकान ठीक किया गया है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि हरेक मेहमान के लिए एक-एक चारपाई, एक-एक कुर्सी और एक-एक मेज हो। हर तीन मेहमानों के लिए एक-एक कहार रखने की तजवीज हो रही है। अभी बारात आने में एक महीने की देर है, लेकिन तैयारियां अभी से हो रही हैं। बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाये कि किसी को जबान हिलाने का मौका न मिले। वे लोग भी याद करें कि किसी के यहां बारात में गये थे। पूरा मकान बर्तनों से भरा हुआ है। चाय के सेट हैं, नाश्ते की तश्तरियां, थाल, लोटे, गिलास। जो लोग नित्य खाट पर पड़े हुक्का पीते रहते थे, बड़ी तत्परता से काम में लगे हुए हैं। अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का ऐसा अच्छा अवसर उन्हें फिर बहुत दिनों के बाद मिलेगा। जहां एक आदमी को जाना होता है, पांच दौड़ते हैं। काम कम होता है, हुल्लड़ अधिक। जरा-जरा सी बात पर घण्टों तर्क-वितर्क होता है और अन्त में वकील साहब को आकर निर्णय करना पड़ता है। एक कहता है, यह घी खराब है, दूसरा कहता है, इससे अच्छा बाजार में मिल जाये तो टांग की राह से निकल जाऊं। तीसरा कहता है, इसमें तो हीक आती है। चौथा कहता है, तुम्हारी नाक ही सड़ गई है, तुम क्या जानो घी किसे कहते हैं। जब से यहां आये हो, घी मिलने लगा है, नहीं तो घी के दर्शन भी न होते थे! इस पर तकरार बढ़ जाती है और वकील साहब को झगड़ा चुकाना पड़ता है।

रात के नौ बजे थे। उदयभानुलाल अन्दर बैठे हुए खर्च का तखमीना लगा रहे थे। वह प्रायः रोज ही तखमीना लगते थे पर रोज ही उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन और परिवर्धन करना पड़ता था। सामने कल्याणी भौंहे सिकोड़े हुए खड़ी थी। बाबू साहब ने बड़ी देर के बाद सिर उठाया और बोले- दस हजार से कम नहीं होता, बल्कि शायद और बढ़ जाये।

कल्याणी-दस दिन में पांच से दस हजार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख नौबत आ जाये।

उदयभानु - क्या करूं, जग हंसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। कोई शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज एक पाई नहीं लेते तो मेरा भी कर्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रखूं।

कल्याणी - जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न नहीं रख सकता। उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई-न-कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियां भी मयस्सर नहीं वह भी बारात में जाकर तानाशाह बन बैठता है। तेल खुशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहां से बटोर लाये, कहार बात नहीं सुनते, लालटेन धुआं देती हैं, कुर्सियों में खटमल है, चारपाइयां ढीली हैं, जनवासे की जगह हवादार नहीं। ऐसी-ऐसी हजारों शिकायतें होती रहती हैं। उन्हें आप कहां तक रोकियेगा? अगर यह मौका न मिला, तो और कोई ऐब निकाल लिये जायेंगे। भई, यह तेल तो रंडियों के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिए। जनाब ने यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखाई है, मानो हमने साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं यमदूत हैं, जब देखिये सिर पर सवार! लालटेन ऐसी भेजी हैं कि आंखें चमकने लगती हैं, अगर दस-पांच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े तो आंखें फूट जाएं। जनवासा क्या है, अभाग का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से झाँके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूँगी कि बारतियों के नखरों का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु - तो आखिर तुम मुझे क्या करने को कहती हो?

कल्याणी-कह तो रही हूँ, पक्का इरादा कर लो कि मैं पांच हजार से अधिक न खर्च करूँगा। घर में तो टका है नहीं, कर्ज ही का भरोसा ठहरा, तो इतना कर्ज क्यों लें कि जिन्दगी में अदा न हो। आखिर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए।

उदयभानु - तो आज मैं मरा जाता हूँ?

कल्याणी - जीने-मरने का हाल कोई नहीं जानता।

कल्याणी - इसमें बिगड़ने की तो कोई बात नहीं। मरना एक दिन सभी को है। कोई यहां अमर होकर थोड़े ही आया है। आंखें बन्द कर लेने से तो होने-वाली बात न टलेगी। रोज आंखों देखती हूं, बाप का देहान्त हो जाता है, उसके बच्चे गली-गली ठोकरें खाते फिरते हैं। आदमी ऐसा काम ही क्यों करे?

उदयभानु न जलकर कहा - जो अब समझ लूं कि मेरे मरने के दिन निकट आ गये, यही तुम्हारी भविष्यवाणी है! सुहाग से स्त्रियों का जी ऊबते नहीं सुना था, आज यह नई बात मालूम हुई। रंडापे में भी कोई सुख होगा ही!

कल्याणी - तुमसे दुनिया की कोई भी बात कही जाती है, तो जहर उगलने लगते हो। इसलिए न कि जानते हो, इसे कहीं टिकना नहीं है, मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है या और कुछ! जहां कोई बात कही, बस सिर हो गये, मानों मैं घर की लौंडी हूं, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूं, तुम और भी दबाते हो। मुफ्तखोर माल उड़ाये, कोई मुंह न खोले, शराब-कबाब में रुपये लुटें, कोई जबान न हिलाये। वे सारे कांटे मेरे बच्चों ही के लिए तो बोये जा रहे हैं।

उदयभानु लाल - तो मैं क्या तुम्हारा गुलाम हूं?

कल्याणी - तो क्या मैं तुम्हारी लौंडी हूं?

उदयभानु लाल - ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारों पर नाचते हैं।

कल्याणी - तो ऐसी स्त्रियों भी होंगी, जो मर्दों की जूतियां सहा करती हैं।

उदयभानु लाल - मैं कमाकर लाता हूं, जैसे चाहूं खर्च कर सकता हूं। किसी को बोलने का अधिकार नहीं।

कल्याणी - तो आप अपना घर संभलिये! ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहां मेरी कोई पूछ नहीं घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी।

इससे जौ भर भी कम नहीं। अगर तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं भी अपने मन को रानी हूँ। तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है। तुम्हारे बच्चे हैं, मारो या जिलाओ। न आंखों से देखूंगी, न पीड़ा होगी। आंखें फूटीं, पीर गई!

उदयभानु - क्या तुम समझती हो कि तुम न संभालेगी तो मेरा घर ही न संभलेगा? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर संभाल सकता हूँ।

कल्याणी - कौन? अगर 'आज के महीने दिन मिट्टी में न मिल जाये, तो कहना कोई कहती थी!

यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा, वह झमककर उठी और कमरे के द्वार की ओर चली। वकील साहब मुकदमें में तो खूब मीन-मेख निकालते थे, लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही-सा ज्ञान था। यही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता है। अगर वे अब भी नरम पड़ जाते और कल्याणी का हाथ पकड़कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती, लेकिन आपसे यह तो हो न सका, उल्टे चलते-चलते एक और चरका दिया। बोले - मैके का घमण्ड होगा?

कल्याणी ने द्वारा पर रुक कर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा और बिफरकर बोली - मैके वाले मेरे तकदीर के साथी नहीं हैं और न मैं इतनी नीच हूँ कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूँ।

उदयभानु - तब कहां जा रही हो?

कल्याणी - तुम यह पूछने वाले कौन होते हो? ईश्वर की सृष्टि में असंख्य प्राप्तिर्यों के लिए जगह है, क्या मेरे ही लिए जगह नहीं है?

यह कहकर कल्याणी कमरे के बाहर निकल गई। आंगन में आकर उसने एक बार आकाश की ओर देखा, मानो तारागण को साक्षी दे रही है कि मैं इस घर में कितनी निर्दयता से निकाली जा रही हूँ। रात के ग्यारह बज गये थे। घर में सन्नाटा छा गया था, दोनों बेटों की चारपाई उसी के कमरे में रहती थी।

वह अपने कमरे में आई, देखा चन्द्रभानु सोया है, सबसे छोटा सूर्यभानु चारपाई पर उठ बैठा है। माता को देखते ही वह बोला - तुम तहां दई तीं अम्मां?

कल्याणी दूर ही से खड़े-खड़े बोली - कहीं तो नहीं बेटा, तुम्हारे बाबूजी के पास गई थी।

सूर्य - तुम तली दई, मुधे अतेले दर लदता था। तुम क्यों तली दई तीं, बताओ?

यह कहकर बच्चे ने गोद में चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला दिये। कल्याणी अब अपने को न रोक सकी। मातृ-स्नेह के सुधा-प्रवाह से उसका संतप्त हृदय परिप्लावित हो गया। हृदय के कोमल पौधे, जो क्रोध के ताप से मुरझा गये थे, फिर हरे हो गये। आंखें सजल हो गईं। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और छाती से लगाकर बोली - तुमने पुकार क्यों न लिया, बेटा?

सूर्य - पुतालता तो ता, तुम थुनती न तीं, बताओ अब तो कबी न दाओगी।

कल्याणी - नहीं भैया, अब नहीं जाऊंगी।

यह कहकर कल्याणी सूर्यभानु को लेकर चारपाई पर लेटी। मां के हृदय से लिपटते ही बालक निःशंक होकर सो गया, कल्याणी के मन में संकल्प-विकल्प होने लगे, पति की बातें याद आतीं तो मन होता - घर को तिलांजलि देकर चली जाऊं, लेकिन बच्चों का मुंह देखती, तो वासल्य से चित्त गदगद हो जाता। बच्चों को किस पर छोड़कर जाऊं? मेरे इन लालों को कौन पालेगा, ये किसके होकर रहेंगे? कौन प्रातःकाल इन्हें दूध और हलवा खिलायेगा, कौन इनकी नींद सोयेगा, इनकी नींद जागेगा? बेचारे कौड़ी के तीन हो जायेंगे। नहीं प्यारो, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगी। तुम्हारे लिए सब कुछ सह लूंगी। निरादर-अपमान, जली-कटी, खोटी-खरी, घुड़की-झिड़की सब तुम्हारे लिए सहूंगी।

कल्याणी तो बच्चे को लेकर लेटी, पर बाबू साहब को नींद न आई उन्हें चोट करनेवाली बातें बड़ी मुश्किल से भूलती थी। उफ, यह मिजाज! मानों मैं ही

इनकी स्त्री हूं। बात मुंह से निकालनी मुश्किल है। अब मैं इनका गुलाम होकर रहूँ। घर में अकेली यह रहें और बाकी जितने अपने बेगाने हैं, सब निकाल दिये जायें। जला करती हैं। मनाती हैं कि यह किसी तरह मरें, तो मैं अकेली आराम करूँ। दिल की बात मुंह से निकल ही आती है, चाहे कोई कितना ही छिपाये। कई दिन से देख रहा हूँ ऐसी ही जली-कटी सुनाया करती हैं। मैके का घमण्ड होगा, लेकिन वहां कोई भी न पूछेगा, अभी सब आवभगत करते हैं। जब जाकर सिर पड़ जायेंगी तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा। रोती हुई जायेंगी। वाह रे घमण्ड! सोचती हैं - मैं ही यह गृहस्थी चलाती हूँ। अभी चार दिन को कहीं चला जाऊँ, तो मालूम हो जायेगा, सारी शेखी किरकिरी हो जायेगा। एक बार इनका घमण्ड तोड़ ही दूँ। जरा वैधव्य का मजा भी चखा दूँ। न जाने इनकी हिम्मत कैसे पड़ती है कि मुझे यों कोसने लगत हैं। मालूम होता है, प्रेम इन्हें छू नहीं गया या समझती हैं, यह घर से इतना चिमटा हुआ है कि इसे चाहे जितना कोसूँ, टलने का नाम न लेगा। यही बात है, पर यहां संसार से चिमटनेवाले जीव नहीं हैं! जहन्नुम में जाये यह घर, जहां ऐसे प्राणियों से पाला पड़े। घर है या नरक? आदमी बाहर से थका-मांदा आता है, तो उसे घर में आराम मिलता है। यहां आराम के बदले कोसने सुनने पड़ते हैं। मेरी मृत्यु के लिए व्रत रखे जाते हैं। यह है पचीस वर्ष के दाम्पत्य जीवन का अन्त! बस, चल ही दूँ। जब देख लूंगा इनका सारा घमण्ड धूल में मिल गया और मिजाज ठण्डा हो गया, तो लौट आऊंगा। चार-पांच दिन काफी होंगे। लो, तुम भी याद करोगी किसी से पाला पड़ा था।

यही सोचते हुए बाबू साहब उठे, रेशमी चादर गले में डाली, कुछ रुपये लिये, अपना कार्ड निकालकर दूसरे कुर्ते की जेब में रखा, छड़ी उठाई और चुपके से बाहर निकले। सब नौकर नींद में मस्त थे। कुत्ता आहट पाकर चौंक पड़ा और उनके साथ हो लिया।

पर यह कौन जानता था कि यह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। जीवन-रंगशाला का वह निर्दय सूत्रधार किसी अगम गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल कूर क्रीड़ा दिखा रहा है। यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रही है, अभिनय सत्य का रूप ग्रहण करने वाला है।

निशा ने इन्द्र को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतंक जमा रखा था। सद्रवृत्तियां मुंह छिपाये पड़ी थीं और कुवृत्तियां विजय-गर्व से इठलाती फिरती थीं। वन में वन्यजन्तु शिकार की खोज में विचार रहे थे और नगरों में नर-पिशाच गलियों में मंडराते फिरते थे।

बाबू उदयभानुलाल लपके हुए गंगा की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने अपना कुर्ता घाट के किनारे रखकर पांच दिन के लिए मिर्जापुर चले जाने का निश्चय किया था। उनके कपड़े देखकर लोगों को डूब जाने का विश्वास हो जायेगा, कार्ड कुर्ते की जेब में था। पता लगाने में कोई दिक्कत न हो सकती थी। दम-के-दम में सारे शहर में खबर मशहूर हो जायेगी। आठ बजते-बजते तो मेरे द्वार पर सारा शहर जमा हो जायेगा, तब देखूं, देवी जी क्या करती हैं?

यही सोचते हुए बाबू साहब गलियों में चले जा रहे थे, सहसा उन्हें अपने पीछे किसी दूसरे आदमी के आने की आहट मिली, समझे कोई होगा। आगे बढ़े, लेकिन जिस गली में वह मुड़ते उसी तरफ यह आदमी भी मुड़ता था। तब बाबू साहब को आशंका हुई कि यह आदमी मेरा पीछा कर रहा है। ऐसा आभास हुआ कि इसकी नीयत साफ नहीं है। उन्होंने तुरन्त जेबी लालटेन निकाली और उसके प्रकाश में उस आदमी को देखा। एक बरिष्ण मनुष्य कन्धे पर लाठी रखे चला आता था। बाबू साहब उसे देखते ही चौंक पड़े। यह शहर का छटा हुआ बदमाश था। तीन साल पहले उस पर डाके का अभियोग चला था। उदयभानु ने उस मुकदमे में सरकार की ओर से पैरवी की थी और इस बदमाश को तीन साल की सजा दिलाई थी। सभी से वह इनके खून का प्यासा हो रहा था। कल ही वह छूटकर आया था। आज दैवात् साहब अकेले रात को दिखाई दिये, तो उसने सोचा यह इनसे दाव चुकाने का अच्छा मौका है। ऐसा मौका शायद ही फिर कभी मिले। तुरन्त पीछे हो लिया और वार करने की घात ही में था कि बाबू साहब ने जेबी लालटेन जलाई।

बदमाश जरा ठिठककर बोला - क्यों बाबूजी पहचानते हो? मैं हूं मतई।

बाबू साहब ने डपटकर कहा - तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आ रहे हो?

मतई - क्यों, किसी को रास्ता चलने की मनाही है? यह गली तुम्हारे बाप की है?

बाबू साहब जवानी में कुश्ती लड़े थे, अब भी हष्ट-पुष्ट आदमी थे। दिल के भी कच्चे न थे। छड़ी संभालकर बोले - अभी शायद मन नहीं भरा। अबकी सात साल को जाओगे।

मतई - मैं सात साल को जाऊंगा या चौदह साल को, पर तुम्हें जिद्दा न छोड़ूंगा। हां, अगर तुम मेरे पैरों पर गिरकर कसम खाओ कि अब किसी को सजा न कराऊंगा, तो छोड़ दूं। बोलो मंजूर है?

उदयभानु - तेरी शामत तो नहीं आई?

मतई - शामत मेरी नहीं आई, तुम्हारी आई है। बोलो खाते हो कसम-एक!

उदयभानु-तुम हटते हो कि मैं पुलिसमैन को बुलाऊं।

मतई - दो!

उदयभानु - (गरजकर) हट जा बादशाह, सामने से!

मतई - तीन!

मुंह से 'तीन' शब्द निकालते ही बाबू साहब के सिर पर लाठी का ऐसा तुला हाथ पड़ा कि वह अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े। मुंह से केवल इतना ही निकला - हाय! मार डाला!

मतई ने समीप आकर देखा, तो सिर फट गया था और खून की धार निकल रही थी। नाड़ी का कहीं पता न था। समझ गया कि काम तमाम हो गया। उसने कलाई से सोने की घड़ी खोल ली, कुर्ते से सोने के बटन निकाल लिये, उंगली से अंगूठी उतारी और अपनी राह चला गया, मानो कुछ

हुआ ही नहीं। हां, इतनी दया की कि लाश रास्ते से घसीटकर किनारे डाल दी। हाय, बेचारे क्या सोचकर चले थे, क्या हो गया! जीवन, तुमसे ज्यादा असार भी दुनिया में कोई वस्तु है? क्या वह उस दीपक की भांति ही क्षणभंगुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है! पानी के एक बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है, जीवन में उतना सार भी नहीं। सांस का भरोसा ही क्या और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं! नहीं जानते, नीचे जानेवाली सांस ऊपर आयेगी या नहीं, पर सोचते इतनी दूर की हैं, मानो हम अमर हैं।

विवाह का विलाप और अनाथों का रोना सुनाकर हम पाठकों का दिल न दुखायेंगे। जिसके ऊपर पड़ती है, वह रोता है, विलाप करता है, पछाड़ें खाता है। यह कोई नयी बात नहीं। हां, अगर आप चाहें तो कल्याणी की उस घोर मानसिक यातना का अनुमान कर सकते हैं, जो उसे इस विचार से हो रही थी कि मैं ही अपने प्राणाधार की घातिका हूं। वे वाक्य जो क्रोध के आवेश में उसके असंयत मुख से निकले थे, अब उसके हृदय को वाणों की भांति छेद रहे थे। अगर पति ने उसकी गोद में कराह-कराहकर प्राण-त्याग दिए होते, तो उसे संतोष होता कि मैंने उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया। शोकाकुल हृदय को इससे ज्यादा सान्त्वना और किसी बात से नहीं होती। उसे इस विचार से कितना संतोष होता कि मेरे स्वामी मुझसे प्रसन्न गये, अन्तिम समय तक उनके हृदय में मेरा प्रेम बना रहा। कल्याणी को यह सन्तोष न था। वह सोचती थी-हा! मेरी पचीस बरस की तपस्या निष्फल हो गई। मैं अन्त समय अपने प्राणपति के प्रेम के वंचित हो गयी। अगर मैंने उन्हें ऐसे कठोर शब्द न कहे होते, तो वह कदापि रात को घर से न जाते। न जाने उनके मन में क्या-क्या विचार आये हों? उनके मनोभावों की कल्पना करके और अपने अपराध को बढ़ा-बढ़ाकर वह आठों पहर कुढ़ती रहती थी। जिन बच्चों पर वह प्राण देती थी, अब उनकी सूरत से चिढ़ती। इन्हीं के कारण मुझे अपने स्वामी से रार मोल लेनी पड़ी। यही मेरे शत्रु हैं। जहां आठों पहर कचहरी-सी लगी रहती थी, वहां अब खाक उड़ती है। वह मेला ही उठ गया। जब खिलानेवाला ही न रहा, तो खानेवाले कैसे पड़े रहते। धीरे-धीरे एक महीने के अन्दर सभी भांजे-भतीजे बिदा हो गये। जिनका दावा था कि हम पानी की जगह खून बहानेवालों में हैं, वे ऐसा सरपट भागे कि पीछे फिरकर भी न देखा। दुनिया ही दूसरी हो गयी। जिन बच्चों को देखकर प्यार करने को जी चाहता था उनके चेहरे पर अब मक्खियां भिनभिनाती थीं। न जाने वह कांति कहां चली गई?

शोक का आवेग कम हुआ, तो निर्मला के विवाह की समस्या उपस्थित हुई। कुछ लोगों की सलाह हुई कि विवाह इस साल रोक दिया जाये, लेकिन कल्याणी ने कहा- इतनी तैयारियों के बाद विवाह को रोक देने से सब किया-धरा मिट्टी में मिल जायेगा और दूसरे साल फिर यही तैयारियां करनी पड़ेंगी,

जिसकी कोई आशा नहीं। विवाह कर ही देना अच्छा है। कुछ लेना-देना तो है ही नहीं। बारातियों के सेवा-सत्कार का काफी सामान हो चुका है, विलम्ब करने में हानि-ही-हानि है। अतएव महाशय भालचन्द्र को शक-सूचना के साथ यह सन्देश भी भेज दिया गया। कल्याणी ने अपने पत्र में लिखा-इस अनाथिनी पर दया कीजिए और डूबती हुई नाव को पार लगाइये। स्वामीजी के मन में बड़ी-बड़ी कामनाएं थीं, किंतु ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था। अब मेरी लाज आपके हाथ है। कन्या आपकी हो चुकी। मैं लोगों के सेवा-सत्कार करने को अपना सौभाग्य समझती हूं, लेकिन यदि इसमें कुछ कमी हो, कुछ त्रुटि पड़े, तो मेरी दशा का विचार करके क्षमा कीजियेगा। मुझे विश्वास है कि आप इस अनाथिनी की निन्दा न होने देंगे, आदि।

कल्याणी ने यह पत्र डाक से न भेजा, बल्कि पुरोहित से कहा-आपको कष्ट तो होगा, पर आप स्वयं जाकर यह पत्र दीजिए और मेरी ओर से बहुत विनय के साथ कहियेगा कि जितने कम आदमी आयें, उतना ही अच्छा। यहां कोई प्रबन्ध करनेवाला नहीं है।

पुरोहित मोटेराम यह सन्देश लेकर तीसरे दिन लखनऊ जा पहुंचे।

संध्या का समय था। बाबू भालचन्द्र दीवानखाने के सामने आरामकुर्सी पर नंग-धड़ंग लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही स्थूल, ऊंचे कद के आदमी थे। ऐसा मालूम होता था कि काला देव है या कोई हब्शी अफ्रीका से पकड़कर आया है। सिर से पैर तक एक ही रंग था-काला। चेहरा इतना स्याह था कि मालूम न होता था कि माथे का अंत कहां है सिर का आरम्भ कहां। बस, कोयले की एक सजीव मूर्ति थी। आपको गर्मी बहुत सताती थी। दो आदमी खड़े पंखा झल रहे थे, उस पर भी पसीने का तार बंधा हुआ था। आप आबकारी के विभाग में एक ऊंचे ओहदे पर थे। पांच सौ रुपये वेतन मिलता था। ठेकेदारों से खूब रिश्वत लेते थे। ठेकेदार शराब के नाम पानी बेचें, चौबीसों घंटे दुकान खुली रखें, आपको केवल खुश रखना काफी था। सारा कानून आपकी खुशी थी। इतनी भयंकर मूर्ति थी कि चांदनी रात में लोग उन्हें देख कर सहसा चौंक पड़ते थे-बालक और स्त्रियां ही नहीं, पुरुष तक सहम जाते थे। चांदनी रात इसलिए कहा गया कि अंधेरी रात में तो उन्हें कोई देख ही न सकता था-श्यामलता अन्धकार में विलीन हो जाती थी। केवल आंखों का रंग लाल था। जैसे पक्का

मुसलमान पांच बार नमाज पढ़ता है, वैसे ही आप भी पांच बार शराब पीते थे, मुफ्त की शराब तो काजी को हलाल है, फिर आप तो शराब के अफसर ही थे, जितनी चाहें पियें, कोई हाथ पकड़ने वाला न था। जब प्यास लगती शराब पी लेते। जैसे कुछ रंगों में परस्पर सहानुभूति है, उसी तरह कुछ रंगों में परस्पर विरोध है। लालिमा के संयोग से कालिमा और भी भयंकर हो जाती है।

बाबू साहब ने पंडितजी को देखते ही कुर्सी से उठकर कहा-अच्छाह! आप हैं? आइए-आइए। धन्य भाग! अरे कोई है। कहां चले गये सब-के-सब, झगड़ू, गुरदीन, छकौड़ी, भवानी, रामगुलाम कोई है? क्या सब-के-सब मर गये! चलो रामगुलाम, भवानी, छकौड़ी, गुरदीन, झगड़ू। कोई नहीं बोलता, सब मर गये! दर्जन-भर आदमी हैं, पर मौके पर एक की भी सूरत नहीं नजर आती, न जाने सब कहां गायब हो जाते हैं। आपके वास्ते कुर्सी लाओ।

बाबू साहब ने ये पांचों नाम कई बार दुहराये, लेकिन यह न हुआ कि पंखा झलनेवाले दोनों आदमियों में से किसी को कुर्सी लाने को भेज देते। तीन-चार मिनट के बाद एक काना आदमी खांसता हुआ आकर बोला-सरकार, ईतना की नौकरी हमार कीन न होई ! कहां तक उधार-बाढ़ी लै-लै खाई मांगत-मांगत थेथर होय गयेना।

भाल - बको मत, जाकर कुर्सी लाओ। जब कोई काम करने की कहा गया, तो रोने लगता है। कहिए पंडितजी, वहां सब कुशल है?

मोटेराम - क्या कुशल कहां बाबूजी, अब कुशल कहां? सारा घर मिट्टी में मिल गया।

इतने में कहार ने एक टूटा हुआ चीड़ का सन्दूक लाकर रख दिया और बोला - कुर्सी-मेज हमारे उठाये नहीं उठत है।

पंडितजी शर्माते हुए डरते-डरते उस पर बैठे कि कहीं टूट न जाये और कल्याणी का पत्र बाबू साहब के हाथ में रख दिया।

भाल - अब और कैसे मिट्टी में मिलेगा? इससे बड़ी और कौन विपत्ति पड़ेगी? बाबू उदयभानु लाल से मेरी पुरानी दोस्ती थी। आदमी नहीं, हीरा था! क्या दिल था, क्या हिम्मत थी, (आंखें पोंछकर) मेरा तो जैसे दाहिना हाथ ही कट गया। विश्वास मानिए, जबसे यह खबर सुनी है, आंखों में अंधेरा-सा छा गया है। खाने बैठता हूं, तो कौर मुंह में नहीं जाता। उनकी सूरत आंखों के सामने खड़ी रहती है। मुंह जूठा करके उठ जाता हूं। किसी काम में दिल नहीं लगता। भाई के मरने का रंज भी इससे कम ही होता है। आदमी नहीं, हीरा था!

मोटे - सरकार, नगर में अब ऐसा कोई रईस नहीं रहा।

भाल - मैं खूब जानता हूं, पंडितजी, आप मुझसे क्या कहते हैं। ऐसा आदमी लाख-दो-लाख में एक होता है। जितना मैं उनको जानता था, उतना दूसरा नहीं जान सकता। दो-ही-तीन बार की मुलाकात में उनका भक्त हो गया और मरने दम तक रहूंगा। आप समझिए साहब से कह दीजिएगा, मुझे दिली रंज है।

मोटे - आपसे ऐसी ही आशा थी! आप-जैसे सज्जनों के दर्शन दुर्लभ हैं। नहीं तो आज कौन बिना दहेज के पुत्र का विवाह करता है।

भाल - महाराज, दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती। उनसे सम्बन्ध हो जाना ही लाख रुपये के बराबर है। मैं इसी को अपना अहोभाग्य समझता हूं। हा! कितनी उदार आत्मता थी। रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं, तिनके के बराबर भी परवाह नहीं की। बुरा रिवाज है, बेहद बुरा! मेरा बस चले, तो दहेज लेनेवालों और दहेज देनेवालों दोनों ही को गोली मार दूं, हां साहब, साफ गोली मार दूं, फिर चाहे फांसी ही क्यों न हो जाय! पूछो, आप लड़के का विवाह करते हैं कि उसे बेचते हैं? अगर आपको लड़के के शादी में दिल खोलकर खर्च करने का अरमान है, तो शौक के खर्च कीजिए, लेकिन जो कुछ कीजिए, अपने बल पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए। नीचता है, घोर नीचता! मेरा बस चले, तो इन पाजियों को गोली मार दूं।

मोटे - धन्य हो सरकार! भगवान् ने आपको बड़ी बुद्धि दी है। यह धर्म का प्रताप है। मालकिन की इच्छा है कि विवाह का मुहूर्त वही रहे और तो उन्होंने सारी बातें पत्र में लिख दी हैं। बस, अब आप ही उबारें तो हम उबर सकते हैं। इस तरह तो बारात में जितने सज्जन आयेंगे, उनकी सेवा-सत्कार हम करेंगे ही, लेकिन परिस्थिति अब बहुत बदल गयी है सरकार, कोई करने-धरनेवाला नहीं है। बस ऐसी बात कीजिए कि वकील साहब के नाम पर बट्टा न लगे।

भालचन्द्र एक मिनट तक आंखें बन्द किये बैठे रहे, फिर एक लम्बी सांस खींच कर बोले - ईश्वर को मंजूर ही न था कि वह लक्ष्मी मेरे घर आती, नहीं तो क्या यह वज्र गिरता? सारे मनसूबे खाक में मिल गये। फूला न समाता था कि वह शुभ-अवसर निकट आ रहा है, पर क्या जानता था कि ईश्वर के दरबार में कुछ और षड्यन्त्र रचा जा रहा है। मरनेवाले की याद ही रूलाने के लिए काफी है। उसे देखकर तो जख्म और भी हरा जो जायेगा। उस दशा में न जाने क्या कर बैठूं। इसे गुण समझिए, चाहे दोष कि जिससे एक बार मेरी घनिष्ठता हो गयी, फिर उसकी याद चित्त से नहीं उतरती। अभी तो खैर इतना ही है कि उनकी सूरत आंखों के सामने नाचती रहती है, लेकिन यदि वह कन्या घर में आ गयी, तब मेरा जिन्दा रहना कठिन हो जायेगा। सच मानिए, रोते-रोते मेरी आंखें फूट जायेंगी। जानता हूं, रोना-धोना व्यर्थ है। जो मर गया वह लौटकर नहीं आ सकता। सब्र करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है, लेकिन दिल से मजबूर हूं। उस अनाथ बालिका को देखकर मेरा कलेजा फट जायेगा।

मोटे - ऐसा न कहिए सरकार! वकील साहब नहीं तो क्या, आप तो हैं। अब आप ही उसके पिता-तुल्य हैं। वह अब वकील साहब की कन्या नहीं, आपकी कन्या है। आपके हृदय के भाव तो कोई जानता नहीं, लोग समझेंगे, वकील साहब का देहान्त हो जाने के कारण आप अपने वचन से फिर गये। इसमें आपकी बदनामी है। चित्त को समझाइए और हंस-खुशी कन्या का पाणिग्रहण करा लीजिए। हाथी मरे तो नौ लाख का। लाख विपत्ति पड़ी है, लेकिन मालकिन आप लोगों की सेवा-सत्कार करने में कोई बात न उठा रखेंगी।

बाबू साहब समझ गये कि पंडित मोटेराम कोरे पोथी के ही पंडित नहीं, वरन व्यवहार-नीति में भी चतुर हैं। बोले - पंडितजी, हलफ से कहता हूं, मुझे उस

लड़की से जितना प्रेम है, उतना अपनी लड़की से भी नहीं है, लेकिन जब ईश्वर को मंजूर नहीं है, तो मेरा क्या बस है? वह मृत्यु एक प्रकार की अमंगल सूचना है, जो विधाता की ओर से हमें मिली है। यह किसी आनेवाली मुसीबत की आकाशवाणी है विधाता स्पष्ट रीति से कह रहा है कि यह विवाह मंगलमय न होगा। ऐसी दशा में आप ही सोचिये, यह संयोग कहां तक उचित है। आप तो विद्वान आदमी हैं। सोचिए, जिस काम का आरम्भ ही अमंगल से हो, उसका अंत अमंगलमय हो सकता है? नहीं, जानबूझकर मक्खी नहीं निगली जाती। समधिन् साहब को समझाकर कह दीजिएगा, मैं उनकी आज्ञापालन करने को तैयार हूं, लेकिन इसका परिणाम अच्छा न होगा। स्वार्थ के वंश में होकर मैं अपने परम मित्र की सन्तान के साथ यह अन्याय नहीं कर सकता।

इस तर्क ने पंडितजी को निरुत्तर कर दिया। वादी ने यह तीर छोड़ा था, जिसकी उनके पास कोई काट न थी। शत्रु ने उन्हीं के हथियार से उन पर वार किया था और वह उसका प्रतिकार न कर सकते थे। वह अभी कोई जवाब सोच ही रहे थे, कि बाबू साहब ने फिर नौकरों को पुकारना शुरू किया - अरे, तुम सब फिर गायब हो गये - झगड़ू, छकौड़ी, भवानी, गुरुदीन, रामगुलाम! एक भी नहीं बोलता, सब-के-सब मर गये। पंडितजी के वास्ते पानी-वानी की फिक्र है? ना जाने इन सबों को कोई कहां तक समझये। अकल छू तक नहीं गयी। देख रहे हैं कि एक महाशय दूर से थके-मांदे चले आ रहे हैं, पर किसी को जरा भी परवाह नहीं। लाओं, पानी-वानी रखो। पंडितजी, आपके लिए शर्बत बनवाऊं या फलाहारी मिठाई मंगवा दूं।

मोटेरामजी मिठाइयों के विषय में किसी तरह का बन्धन न स्वीकार करते थे। उनका सिद्धान्त था कि घृत से सभी वस्तुएं पवित्र हो जाती हैं। रसगुल्ले और बेसन के लड्डू उन्हें बहुत प्रिय थे, पर शर्बत से उन्हें रुचि न थी। पानी से पेट भरना उनके नियम के विरुद्ध था। सकुचाते हुए बोले - शर्बत पीने की तो मुझे आदत नहीं, मिठाई खा लूंगा।

भाल - फलाहारी न?

मोटे - इसका मुझे कोई विचार नहीं।

भाल - है तो यही बात। छूत-छात सब ढकोसला है। मैं स्वयं नहीं मानता। अरे, अभी तक कोई नहीं आया? छकौड़ी, भवानी, गुरुदीन, रामगुलाम, कोई तो बोले!

अबकी भी वही बूढ़ा कहार खांसता हुआ आकर खड़ा हो गया और बोला - सरकार, मोर तलब दै दीन जाय। ऐसी नौकरी मोसे न होई। कहां लो दौरी दौरत-दौरत गोड़ पिराय लागत है।

भाल - काम कुछ करो या न करो, पर तलब पहिले चहिए! दिन भर पड़े-पड़े खांसा करो, तलब तो तुम्हारी चढ़ रही है। जाकर बाजार से एक आने की ताजी मिठाई ला। दौड़ता हुआ जा।

कहार को यह हुक्म देकर बाबू साहब घर में गये और स्त्री से बोले - वहां से एक पंडितजी आये हैं। यह खत लाये हैं, जरा पढ़ो तो।

पत्नी जी का नाम रंगीलीबाई था। गोरे रंग की प्रसन्न-मुख महिला थीं। रूप और यौवन उनसे विदा हो रहे थे, पर किसी प्रेमी मित्र की भांति मचल-मचल कर तीस साल तक जिसके गले से लगे रहे, उसे छोड़ते न बनता था।

रंगीलीबाई बैठी पान लगा रही थीं। बोली - कह दिया न कि हमें वहां ब्याह करना मंजूर नहीं।

भाल - हां, कह तो दिया, पर मारे संकोच के मुंह से शब्द न निकलता था। झूठ-मूठ का होला करना पड़ता।

रंगीली - साफ बात करने में संकोच क्या? हमारी इच्छा है, नहीं करते। किसी का कुछ लिया तो नहीं है? जब दूसरी जगह दस हजार नगद मिल रहे हैं; तो वहां क्यों न करूं? उनकी लड़की कोई सोने की थोड़े ही है। वकील साहब जीते होते तो शरमाते-शमाते पन्द्रह-बीस हजार दे मरते। अब वहां क्या रखा है?

भाल - एक दफा जबान देकर मुकर जाना अच्छी बात नहीं। कोई मुख से कुछ न कह, पर बदनामी हुए बिना नहीं रहती। मगर तुम्हारी जिद से मजबूर हूँ।

रंगीलीबाई ने पान खाकर खत खोला और पढ़ने लगीं। हिन्दी का अभ्यास बाबू साहब को तो बिल्कुल न था और यद्यपि रंगीलीबाई भी शायद ही कभी किताब पढ़ती हों, पर खत-वत पढ़ लेती थीं। पहली ही पांति पढ़कर उनकी आंखें सजल हो गयीं और पत्र समाप्त किया। तो उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे - एक-एक शब्द करुणा के रस में डूबा हुआ था। एक-एक अक्षर से दीनता टपक रही थी। रंगीलीबाई की कठोरता पत्थर की नहीं, लाख की थी, जो एक ही आंच से पिघल जाती है। कल्याणी के करुणोत्पादक शब्दों ने उनके स्वार्थ-मंडित हृदय को पिघला दिया। रूंधे हुए कंठ से बोली- अभी ब्राह्मण बैठा है न?

भालचन्द्र पत्नी के आंसुओं को देख - देखकर सूखे जाते थे। अपने ऊपर झल्ला रहे थे कि नाहक मैंने यह खत इसे दिखाया। इसकी जरूरत क्या थी? इतनी बड़ी भूल उनसे कभी न हुई थी। संदिग्ध भाव से बोले - शायद बैठा हो, मैंने तो जाने को कह दिया था। रंगीली ने खिड़की से झांककर देखा। पंडित मोटेराम जी बगुले की तरह ध्यान लगाये बाजार के रास्ते की ओर ताक रहे थे। लालसा में व्यग्र होकर कभी यह पहलू बदलते, कभी वह पहलू। 'एक आने की मिठाई' ने तो आशा की कमर ही तोड़ दी थी, उसमें भी यह विलम्ब, दारुण दशा थी। उन्हें बैठे देखकर रंगीलीबाई बोली - है-है अभी है, जाकर कह दो, हम विवाह करेंगे, जरूर करेंगे। बेचारी बड़ी मुसीबत में है।

भाल - तुम कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करने लगती हो, अभी उससे कह आया हूँ कि मुझे विवाह करना मंजूर नहीं। एक लम्बी-चौड़ी भूमिका बांधनी पड़ी। अब जाकर यह संदेश कहूंगा, तो वह अपने दिल में क्या कहेगा, जरा सोचो तो? यह शादी-विवाह का मामला है। लड़कों का खेल नहीं कि अभी एक बात तय की, अभी पलट गये। भले आदमी की बात न हुई, दिल्लगी हुई।

रंगीली - अच्छा, तुम अपने मुंह से न कहो, उस ब्राह्मण को मेरे पास भेज दो। मैं इस तरह समझा दूंगी कि तुम्हारी बात भी रह जाये और मेरी भी। इसमें तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है।

भाल - तुम अपने सिवा सारी दुनिया को नादान समझती हो। तुम कहो या मैं कहूँ, बात एक ही है। जो बात तय हो गयी, वह हो गई, अब मैं उसे फिर नहीं उठाना चाहता। तुम्हीं तो बार-बार कहती थीं कि मैं वहां न करूंगी। तुम्हारे ही कारण मुझे अपनी बात खोनी पड़ी। अब तुम फिर रंग बदलती हो। यह तो मेरी छाती पर मूंग दलना है। आखिर तुम्हें कुछ तो मेरे मान-अपमान का विचार करना चाहिए।

रंगीली - तो मुझे क्या मालूम था कि विधवा की दशा इतनी हीन हो गया है? तुम्हीं ने तो कहा था कि उसने पति की सारी सम्पत्ति छिपा रखी है और अपनी गरीबी का ढोंग रचकर काम निकालना चाहती है। एक ही छंटी औरत है। तुमने जो कहा, वह मैंने मान लिया। भलाई करके बुराई करने में तो लज्जा और संकोच है। बुराई करके भलाई करने में कोई संकोच नहीं। अगर तुम 'हां' कर आये होते और मैं 'नहीं' करने को कहती, तो तुम्हारा संकोच उचित था। 'नहीं' करने के बाद 'हां' करने में तो अपना बड़प्पन है।

भाल - तुम्हें बड़प्पन मालूम होता हो, मुझे तो लुच्चापन ही मालूम होता है। फिर तुमने यह कैसे मान लिया कि मैंने वकीलाइन में विषय में जो बात कही थी, वह झूठी थी! क्या वह पत्र देखकर? तुम जैसी खुद सरल हो, वैसे ही दूसरे को भी सरल समझती हो।

रंगीली - इस पत्र में बनावट नहीं मालूम होती। बनावट की बात दिल में चुभती नहीं। उसमें बनावट की गन्ध अवश्य रहती है।

भाल - बनावट की बात तो ऐसी चुभती है कि सच्ची बात उसके सामने बिल्कुल फीकी मालूम होती है। यह किस्से-कहानियां लिखने वाले जिनकी किताबें पढ़-पढ़कर तुम घंटों रोती हो, क्या सच्ची बातें लिखते हैं? सरासर झूठ का तूमार बांधते हैं। यह भी एक कला है।

रंगीली - क्यों जी, तुम मुझसे भी उड़ते हो! दाई से पेट छिपाते हो? मैं तुम्हारी बातें मान जाती हूँ, तो तुम समझते हो, इसे चकमा दिया। मगर मैं तुम्हारी एक-एक नस पहचानती हूँ। तुम अपना ऐब मेरे सिर मढ़कर खुद बेदाग बचना चाहते हो। बोलो, कुछ झूठ कहती हूँ, जब वकील साहब जीते थे, जो तुमने सोचा था कि ठहराव की जरूरत ही क्या है, वे खुद ही जितना उचित समझेंगे देंगे, बल्कि बिना ठहराव के और भी ज्यादा मिलने की आशा होगी। अब जो वकील साहब का देहान्त हो गया, तो तरह-तरह के हीले-हवाले करने लगे। यह भलमनसी नहीं, छोटापन है, इसका इलजाम भी तुम्हारे सिर है। मैं। अब शादी-ब्याह के नगीच न जाऊंगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। ढोंगी आदमियों से मुझे चिढ़ है। जो बात करो, सफाई से करो, बुरा हो या अच्छा। 'हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और' वाली नीति पर चलना तुम्हें शोभा नहीं देता। बोला आब भी वहां शादी करते हो या नहीं?

भाला - जब मैं बेईमान, दगाबाज और झूठा ठहरा, तो मुझसे पूछना ही क्या! मगर खूब पहचानती हो आदमियों को! क्या कहना है, तुम्हारी इस सूझ-बूझ की, बलैया ले लें!

रंगीली - हो बड़े हयादार, जरा भी नहीं शरमाते। ईमान से कहा, मैंने बात ताड़ ली कि नहीं?

भाल - अजी जाओ, वह दूसरी औरतें होती हैं जो मर्दों को पहचानती हैं। अब तक मैं यही समझता था कि औरतों की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होती है, पर आज यह विश्वास उठ गया और महात्माओं ने औरतों के विषय में जो तत्व की बातें कही हैं, उनको मानना पड़ा।

रंगीली - जरा आईने में अपनी सूरत तो देख आओ, तुम्हें मेरी कमस है। जरा देख लो, कितना झेंपे हुए हो।

भाल- सच कहना, कितना झेंपा हुआ हूँ?

रंगीली - इतना ही, जितना कोई भलामानस चोर चोरी खुल जाने पर झेंपता है।

भाल - खैर, मैं झेंपा ही सही, पर शादी वहां न होगी।

रंगीली - मेरी बला से, जहां चाहो करो। क्यों, भुवन से एक बार क्यों नहीं पूछ लेते?

भाल - अच्छी बात है, उसी पर फैसला रहा।

रंगीली - जरा भी इशारा न करना!

भाल - अजी, मैं उसकी तरफ ताकूंगा भी नहीं।

संयोग से ठीक इसी वक्त भुवनमोहन भी आ पहुंचा। ऐसे सुन्दर, सुडौल, बलिष्ठ युवक कालेजों में बहुत कम देखने में आते हैं। बिल्कुल मां को पड़ा था, वही गोरा-चिट्ठा रंग, वही पतले-पतले गुलाब की पत्ती के-से ओंठ, वही चौड़ा, माथा, वही बड़ी-बड़ी आंखें, डील-डौल बाप का-सा था। ऊंचा कोट, ब्रीचेज, टाई, बूट, हैट उस पर खूब ल रहे थे। हाथ में एक हाकी-स्टिक थी। चाल में जवानी का गरूर था, आंखों में आमलमगौरव।

रंगीली ने कहा-आज बड़ी देर लगाई तुमने? यह देखो, तुम्हारी ससुराल से यह खत आया है। तुम्हारी सास ने लिखा है। साफ-साफ बतला दो, अभी सबेरा है। तुम्हें वहां शादी करना मंजूर है या नहीं?

भुवन - शादी करनी तो चाहिए अम्मां, पर मैं करूंगा नहीं।

रंगीली - क्यों?

भुवन - कहीं ऐसी जगह शादी करवाइये कि खूब रुपये मिलें। और न सही एक लाख का तो डौल हो। वहां अब क्या रखा है? वकील साहब रहे ही नहीं, बुढ़िया के पास अब क्या होगा?

रंगीली - तुम्हें ऐसी बातें मुंह से निकालते शर्म नहीं आती?

भुवन - इसमें शर्म की कौन-सी बात है? रुपये किसे काटते हैं? लाख रुपये तो लाख जन्म में भी न जमा कर पाऊंगा। इस साल पास भी हो गया, तो कम-से-कम पांच साल तक रुपये से सूरत नजर न आयेगी। फिर सौ-दो-सौ रुपये महीने कमाने लगूंगा। पांच-छः तक पहुंचते-पहुंचते उम्र के तीन भाग बीत जायेंगे। रुपये जमा करने की नौबत ही न आयेगी। दुनिया का कुछ मजा न उठा सकूंगा। किसी धनी की लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख हो या फिर कोई ऐसी जायदादवाली बेवा मिले, जिसके एक ही लड़की हो।

रंगीली - चाहे औरत कैसे ही मिले।

भुवन - धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे वह गालियां भी सुनाये, तो भी चूं न करूं। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है?

बाबू साहब ने प्रशंसा-सूचक भाव से कहा-हमें उन लोगों के साथ सहानुभूति है और दुःखी है कि ईश्वर ने उन्हें विपत्ति में डाला, लेकिन बुद्धि से काम लेकर ही कोई निश्चय करना चाहिए। हम कितने ही फटे-हालों जायें, फिर भी अच्छी-खासी बारात हो जायेगी। वहां भोजन का भी ठिकाना नहीं। सिवा इसके कि लोग हंसें और कोई नतीजा न निकलेगा।

रंगीली - तुम बाप-पूत दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। दोनों उस गरीब लड़की के गले पर छुरी फेरना चाहते हो।

भुवन -जो गरीब है, उसे गरीबों ही के यहां सम्बन्ध करना चाहिए। अपनी हैसियत से बढ़कर.....।

रंगीली - चुप भी रह, आया है वहां से हैसियत लेकर। तुम कहां के धन्ना-सेठ हो? कोई आदमी द्वाारा पर आ जाये, तो एक लोटे पानी को तरस जाये। बड़े हैसियतवाले बने हो!

यह कहकर रंगीली वहां से उठकर रसोई का प्रबन्ध करने चली गयी।

भुवनमोहन मुस्कराता हुआ अपने कमरे में चला गया और बाबू साहब मूछों पर ताव देते हुए बाहर आये कि मोटेराम को अन्तिम निश्चय सुना दें। पर उनका कहीं पता न था।

मोटेरामजी कुछ देर तक तो कहार की राह देखते रहे, जब उसके आने में बहुत देर हुई, तो उनसे बैठ न गया। सोचा यहां बैठे-बैठे काम न चलेगा, कुछ उद्योग करना चाहिए। भाग्य के भरोसे यहां अड़ी किये बैठे रहें, तो भूखों मर जायेंगे। यहां तुम्हारी दाल नहीं गलने की। चुपके से लकड़ी उठायी और जिधर वह कहार गया था, उसी तरफ चले। बाजार थोड़ी ही दूर पर था, एक क्षण में जा पहुंचे। देखा, तो बुढ़ा एक हलवाई की दूकान पर बैठा चिलम पी रहा था। उसे देखते ही आपने बड़ी बेतकल्लुफी से कहा-अभी कुछ तैयार नहीं है क्या महारा? सरकार यहां बैठे बिगड़ रहे हैं कि जाकर सो गया या ताड़ी पीने लगा। मैंने कहा-‘सरकार यह बात नहीं, बुढ़ा आदमी है, आते ही आते तो आयेगा।’ बड़े विचित्र जीव हैं। न जाने इनके यहां कैसे नौकर टिकते हैं।

कहार - मुझे छोड़कर आज तक दूसरा कोई टिका नहीं, और न टिकेगा। साल-भर से तलब नहीं मिली। किसी को तलब नहीं देते। जहां किसी ने तलब मांगी और लगे डांटने। बेचारा नौकरी छोड़कर भाग जाता है। वे दोनों आदमी, जो पंखा झल रहे थे, सरकारी नौकर हैं। सरकार से दो अर्दली मिले हैं न! इसी से पड़े हुए हैं। मैं भी सोचता हूं, जैसा तेरा ताना-बाना वैसे मेरी भरनी! इस साल कट गये हैं, साल दो साल और इसी तरह कट जायेंगे।

मोटेराम - तो तुम्हीं अकेले हो? नाम तो कई कहारों का लेते है।

कहार - वह सब इन दो-तीन महीनों के अन्दर आये और छोड़-छोड़ कर चले गये। यह अपना रोब जमाने को अभी तक उनका नाम जपा करते हैं। कहीं नौकरी दिलाइएगा, चलूं?

मोटेराम - अजी, बहुत नौकरी है। कहार तो आजकल ढूंढे नहीं मिलते। तुम तो पुराने आदमी हो, तुम्हारे लिए नौकरी की क्या कमी है। यहां कोई ताजी चीज? मुझसे कहने लगे, खिचड़ी बनाइएगा या बाटी लगाइएगा? मैंने कह दिया-सरकार, बुढ़ा आदमी है, रात को उसे मेरा भोजन बनाने में कष्ट होगा,

मैं कुछ बाजार ही से खा लूंगा। इसकी आप चिन्ता न करें। बोले, अच्छी बात है, कहार आपको दुकान पर मिलेगा। बोलो साहजी, कुछ तर माल तैयार है? लड्डू तो ताजे मालूम होते हैं तौल दो एक सेर भर। आ जाऊं वहीं ऊपर न?

यह कहकर मोटेरामजी हलवाई की दूकान पर जा बैठे और तर माल चखने लगे। खूब छककर खाया। ढाई-तीन सेर चट कर गये। खाते जाते थे और हलवाई की तारीफ करते जाते थे- शाहजी, तुम्हारी दूकान का जैसा नाम सुना था, वैसा ही माल भी पाया। बनारसवाले ऐसे रसगुल्ले नहीं बना पाते, कलाकन्द अच्छी बनाते हैं, पर तुम्हारी उनसे बुरी नहीं, माल डालने से अच्छी चीज नहीं बन जाती, विद्या चाहिए।

हलवाई - कुछ और लीजिए महाराज! थोड़ी-सी रबड़ी मेरी तरफ से लीजिए।

मोटेराम - इच्छा तो नहीं है, लेकिन दे दो पाव-भर।

हलवाई - पाव-भर क्या लीजिएगा? चीज अच्छी है, आध सेर तो लीजिए।

खूब इच्छापूर्ण भोजन करके पंडितजी ने थोड़ी देर तक बाजार की सैर की और नौ बजते-बजते मकान पर आये। यहां सन्नाटा-सा छाया हुआ था। एक लालटेन जल रही थी। अपने चबूतरे पर बिस्तर जमाया और सो गये।

सबरे अपने नियमानुसार कोई आठ बजे उठे, तो देखा कि बाबूसाहब टहल रहे हैं। इन्हें जगा देखकर वह पालागन कर बोले-महाराज, आज रात कहां चले गये? मैं बड़ी रात तक आपकी राह देखता रहा। भोजन का सब सामान बड़ी देर तक रखा रहा। जब आज न आये, तो रखवा दिया गया। आपने कुछ भोजन किया था। या नहीं?

मोटे - हलवाई की दूकान में कुछ खा आया था।

भाल - अजी पूरी-मिठाई में वह आनन्द कहां, जो बाटी और दाल में है। दस-बारह आने खर्च हो गये होंगे, फिर भी पेट न भरा होगा, आप मेरे मेहमान हैं, जितने पैसे लगे हों ले लीजिएगा।

मोटे - आप ही के हलवाई की दूकान पर खाया था, वह जो नुक्कड़ पर बैठता है।

भाल - कितने पैसे देने पड़े?

मोटे- आपके हिसाब में लिखा दिये हैं।

भाल - जितनी मिठाइयां ली हों, मुझे बता दीजिए, नहीं तो पीछे से बेईमानी करने लगेगा। एक ही ठग है।

मोटे - कोई ढाई सेर मिठाई थी और आधा सेर रबड़ी।

बाबू साहब ने विस्फुरित नेत्रों से पंडितजी को देखा, मानो कोई अचम्भे की बात सुनी हो। तीन सेर तो कभी यहां महीने भर का टोटल भी न होता था और यह महाशय एक ही बार में कोई चार रुपये का माल उड़ा गये। अगर एक आध दिन और रह गये, तो या बैठ जायेगी। पेट है या शैतान की कब्र? तीन सेर! कुछ ठिकाना है! उद्विग्न दशा में दौड़े हुए अन्दर गये और रंगीली से बोले - कुछ सुनती हो, यह महाशय कल तीन सेर मिठाई उड़ा गये। तीन सेर पक्की तौल!

रंगीलीबाई ने विस्मित होकर कहा - अजी नहीं, तीन सेर भला क्या खा जायेगा! आदमी है या बैल?

भाल - तीन सेर तो अपने मुंह से कह रहा है। चार सेर से कम न होगा, पक्की तौल!

रंगीली - पेट में सनीचर है क्या?

भाल - आज और रह गया तो छः सेर पर हाथ फेरेगा।

रंगीली - तो आज रहे ही क्यों, खत का जवाब जो देना देकर विदा करो। अगर रहे तो साफ कह देना कि हमारे यहां मिठाई मुफ्त नहीं आती। खिचड़ी बनाना हो, बनावे, नहीं तो अपनी राह ले। जिन्हें ऐसे पेटुओं को खिलाने से मुक्ति मिलती हो, वे खिलायें हमें ऐसी मुक्ति न चाहिये!

मगर पंडित विदा होने को तैयार बैठे थे, इसलिए बाबूसाहब को कौशल से काम लेने की जरूरत न पड़ी।

पूछा - क्या तैयारी कर दी महाराज?

मोटे - हां सरकार, अब चलूंगा। नौ बजे की गाड़ी मिलेगी न?

भाल - भला आज तो और रहिए।

यह कहते-कहते बाबूजी को भय हुआ कि कहीं यह महाराज सचमुच न रह जायें, इसलिये वाक्य को यों पूरा किया - हां, वहां भी लोग आपका इन्तजार कर रहे होंगे।

मोटे - एक-दो दिन की तो कोई बात न थी और विचार भी यही था कि त्रिवेणी का स्नान करूंगा, पर बुरा न मानिए तो कहूं, आप लोगों में ब्राह्मणों के प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं है। हमारे जजमान हैं, जो हमारा मुंह जोहते रहते हैं कि पंडितजी कोई आज्ञा दें, तो उसका पालन करें। हम उनके द्वारा पहुंच जाते हैं, तो वे अपना धन्य भाग्य समझते हैं और सारा घर-छोटे से बड़े तक हमारी सेवा-सत्कार में मग्न हो जाते हैं। जहां अपना आदर नहीं, वहां एक क्षण भी ठहरना असहाय है। जहां ब्रह्मण का आदर नहीं, वहां कल्याण नहीं हो सकता।

भाल - महाराज, हमसे तो ऐसा अपराध नहीं हुआ।

मोटे - अपराध नहीं हुआ! और अपराध कहते किसे हैं? अभी आप ही ने घर में जाकर कहा कि यह महाशय तीन सेर मिठाई चट कर गये, पक्की तौल।

आपने अभी खानेवाले देखे कहां? एक बार खिलाड़िये तो आंखें खुल जायें। ऐसे-ऐसे महान पुरुष पड़े हैं, जो पसेरी भर मिठाई खा जायें और डकार तक न लें। एक-एक मिठाई खाने के लिए हमारी चिरौरी की जाती है, रुपये दिये जाते हैं। हम भिक्षुक ब्राह्मण नहीं हैं, जो आपके द्वार पर पड़े रहें। आपका नाम सुनकर आये थे, यह न जानते थे कि यहां मेरे भोजन के भी लाले पड़ेंगे। जाड़िये, भगवान् आपका कल्याण करें!

बाबू साहब ऐसा झंपे कि मुंह से बात न निकली। जिन्दगी भर मैं उन पर कभी ऐसी फटकार न पड़ी थी। बहुत बातें बनायीं-आपकी चर्चा न थी, एक दूसरे ही महाशय की बात थी, लेकिन पंडितजी का क्रोध शान्त न हुआ। वह सब कुछ सह सकते थे, पर अपने पेट की निन्दा न सह सकते थे। औरतों को रूप की निन्दा जितनी प्रिय लगती है, उससे कहीं अधिक अप्रिय पुरुषों को अपने पेट की निन्दा लगती है। बाबू साहब मनाते तो थे; पर धड़का भी समाया हुआ था कि यह टिक न जायें। उनकी कृपणता का परदा खुल गया था, अब इसमें सन्देह न था। उस पर्दे को ढांकना जरूरी था। अपनी कृपणता को छिपाने के लिए उन्होंने कोई बात उठा न रखी पर होनेवाली बात होकर रही। पछता रहे थे कि कहां से घर में इसकी बात कहने गया और कहा भी तो उच्च स्वर में। यह दुष्ट भी कान लगाये सुनता रहा, किन्तु अब पछताने से क्या हो सकता था? न जाने किस मनहूस की सूत देखी थी यह विपत्ति गले पड़ी। अगर इस वक्त यहां से रुष्ट होकर चला गया; तो वहां जाकर बदनाम करेगा और मेरा सारा कौशल खुल जायेगा। अब तो इसका मुंह बन्द कर देना ही पड़ेगा।

यह सोच-विचार करते हुए वह घर में जाकर रंगीलीबाई से बोले - इस दुष्ट ने हमारी-तुम्हारी बातें सुन लीं। रुठकर चला जा रहा है।

रंगीली - जब तुम जानते थे कि द्वार पर खड़ा है, तो धीरे से क्यों न बोले?

भाल - विपत्ति आती है; तो अकेले नहीं आती। यह क्या जानता था कि वह द्वार पर कान लगाये खड़ा है।

रंगीली - न जाने किसका मुंह देख था?

भाल - वही दुष्ट सामने लेटा हुआ था। जानता तो उधर ताकता ही नहीं। अब तो इसे कुछ दे-दिलाकर राजी करना पड़ेगा।

रंगीली - ऊँह, जाने भी दो। जब तुम्हें वहां विवाह ही नहीं करना है, तो क्या परवाह है? जो चाहे समझे, जो चाहे कहे।

भाल - यों जान न बचेगी। आओं दस रुपये विदाई के बहाने दे दूं। ईश्वर फिर इस मनहूस की सूरत न दिखाये।

रंगीली ने बहुत अच्छाते-पछताते दस रुपये निकाले और बाबू साहब ने उन्हें ले जाकर पंडितजी के चरणों पर रख दिया। पंडितजी ने दिल में कहा-धत्तैरे मक्खीचूस की! ऐसा रगड़ा कि याद करोगे। तुम समझते होगे कि दस रुपये देकर इसे उल्लू बना लूंगा। इस फेर में न रहना। यहां तुम्हारी नस-नस पहचानते हैं। रुपये जेब में रख लिये और आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

बाबू साहब बड़ी देकर तक खड़े सोच रहे थे-मालूम नहीं, अब भी मुझे कृपण ही समझ रहा है या परदा ढंक गया। कहीं ये रुपये भी तो पानी में नहीं गिर पड़े।

कल्याणी के सामने अब एक विषम समस्या आ खड़ी हुई। पति के देहान्त के बाद उसे अपनी दुरवस्था का यह पहला और बहुत ही कड़वा अनुभव हुआ। दरिद्र विधवा के लिए इससे बड़ी और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान बेटी सिर पर सवार हो? लड़के नंगे पांव पढ़ने जा सकते हैं, चौका-बर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है, रूखा-सूखा खाकर निर्वाह किया जा सकता है, झोपड़े में दिन काटे जा सकते हैं, लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बैठाई जा सकती। कल्याणी को भालचन्द्र पर ऐसा क्रोध आता था कि स्वयं जाकर उसके मुंह में कालिख लगाऊं, सिर के बाल नोच लूं, कहूं कि तू अपनी बात से फिर गया, तू अपने बाप का बेटा नहीं। पंडित मोटेराम ने उनकी कपट-लीला का नग्न वृत्तान्त सुना दिया था।

वह इसी क्रोध में भरी बैठी थी कि कृष्णा खेलती हुई आयी और बोली - कै दिन में बारात आयेगी अम्मां? पंडित तो आ गये।

कल्याणी - बारात का सपना देख रही है क्या?

कृष्णा - वही चन्दर तो कह रहा है कि दो-तीन दिन में बारात आयेगी, क्या न जायेगी अम्मां?

कल्याणी - एक बार तो कह दिया, सिर क्यों खाती है?

कृष्णा - सबके घर तो बारात आ रही है, हमारे यहां क्यों नहीं आती?

कल्याणी - तेरे यहां जो बारात लाने वाला था, उसके घर में आग लग गई।

कृष्णा - सच, अम्मां! तब तो सारा घर जल गया होगा। कहां रहते होंगे? बहन कहां जाकर रहेगी?

कल्याणी - अरे पगली! तू तो बात ही नहीं समझती। आग नहीं लगी। वह हमारे यहां ब्याह न करेगा।

कृष्णा - यह क्यों अम्मां? पहले तो वहीं ठीक हो गया था न?

कल्याणी - बहुत से रुपये मांगता है। मेरे पास उसे देने को रुपये नहीं हैं।

कृष्णा - क्या बड़े लालची हैं, अम्मां?

कल्याणी - लालची नहीं तो और क्या है। पूरा कसाई निर्दयी, दगाबाज।

कृष्णा - तब तो अम्मां, बहुत अच्छा हुआ कि उसके घर बहन का ब्याह नहीं हुआ। बहन उसके साथ कैसे रहती? यह तो खुश होने की बात है अम्मां, तुम रंज क्यों करती हो?

कल्याणी ने पुत्री को स्नेहमयी दृष्टि से देखा। इनका कथन कितना सत्य है? भोले शब्दों में समस्या का कितना मार्मिक निरूपण है? सचमुच यह ते प्रसन्न होने की बात है कि ऐसे कुपात्रों से सम्बन्ध नहीं हुआ, रंज की कोई बात नहीं। ऐसे कुमानुसों के बीच में बेचारी निर्मला की न जाने क्या गति होती अपने नसीबों को रोती। जरा सा घी दाल में अधिक पड़ जाता, तो सारे घर में शोर मच जाता, जरा खाना ज्यादा पक जाता, तो सास दनिया सिर पर उठा लेती। लड़का भी ऐसा लोभी है। बड़ी अच्छी बात हुई, नहीं, बेचारी को उम भर रोना पड़ता। कल्याणी यहां से उठी, तो उसका हृदय हल्का हो गया था।

लेकिन विवाह तो करना ही था और हो सके तो इसी साल, नहीं तो दूसरे साल फिर नये सिर से तैयारियां करनी पड़ेगी। अब अच्छे घर की जरूरत न थी। अच्छे वर की जरूरत न थी। अभागिनी को अच्छा घर-वर कहां मिलता! अब तो किसी भांति सिर का बोझ उतारना था, किसी भांति लड़की को पार लगाना था, उसे कुएं में झोंकना था। यह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है, कुलीन है, तो हुआ करें, दहेज नहीं तो उसके सारे गुण दोष हैं, दहेज हो तो सारे दोष गुण हैं। प्राणी का कोई मूल्य नहीं, केवल देहज का मूल्य है। कितनी विषम भग्यलीला है!

कल्याणी का दोष कुछ कम न था। अबला और विधवा होना ही उसे दोषों से मुक्त नहीं कर सकता। उसे अपने लड़के अपनी लड़कियों से कहीं ज्यादा प्यारे थे। लड़के हल के बैल हैं, भूसे खली पर पहला हक उनका है, उनके खाने से जो बचे वह गायों का! मकान था, कुछ नकद था, कई हजार के गहने थे, लेकिन उसे अभी दो लड़कों का पालन-पोषण करना था, उन्हें पढ़ाना-लिखाना था। एक कन्या और भी चार-पांच साल में विवाह करने योग्य हो जायेगी। इसलिए वह कोई बड़ी रकम दहेज में न दे सकती थी, आखिर लड़कों को भी तो कुछ चाहिए। वे क्या समझेंगे कि हमारा भी कोई बाप था।

पंडित मोटेराम को लखनऊ से लौटे पन्द्रह दिन बीत चुके थे। लौटने के बाद दूसरे ही दिन से वह वर की खोज में निकले थे। उन्होंने प्रण किया था कि मैं लखनऊ वालों को दिखा दूंगा कि संसार में तुम्हीं अकेले नहीं हो, तुम्हारे ऐसे और भी कितने पड़े हुए हैं। कल्याणी रोज दिन गिना करती थी। आज उसने उन्हें पत्र लिखने का निश्चय किया और कलम-दवात लेकर बैठी ही थी कि पंडित मोटेराम ने पदार्पण किया।

कल्याणी - आइये पंडितजी, मैं तो आपको खत लिखने जा रही थी, कब लौटे?

मोटेराम - लौटा तो प्रातःकाल ही था, पर इसी समय एक सेठ के यहां से निमन्त्रण आ गया। कई दिन से तर माल न मिले थे। मैंने कहा कि लगे हाथ यह भी काम निपटाता चलूं। अभी उधर ही से लौटा आ रहा हूं, कोई पांच सौ ब्रह्मणों को पंगत थी।

कल्याणी - कुछ कार्य भी सिद्ध हुआ या रास्ता ही नापना पड़ा।

मोटेराम - कार्य क्यों न सिद्ध होगा? भला, यह भी कोई बात है? पांच जगह बातचीत कर आया हूं। पांचों की नकल लाया हूं। उनमें से आप चाहे जिसे पसन्द करें। यह देखिए इस लड़के का बाप डाक के सीगे में सौ रुपये महीने का नौकर है। लड़का अभी कालेज में पढ़ रहा है। मगर नौकरी का भरोसा है, घर में कोई जायदाद नहीं। लड़का होनहार मालूम होता है। खानदान भी अच्छा है दो हजार में बात तय हो जायेगी। मांगते तो यह तीन हजार हैं।

कल्याणी - लड़के के कोई भाई है?

मोटे - नहीं, मगर तीन बहनें हैं और तीनों क्वारी। माता जीवित है। अच्छा अब दूसरी नकल दिये। यह लड़का रेल के सीगे में पचास रुपये महीना पाता है। मां-बाप नहीं हैं। बहुत ही रूपवान् सुशील और शरीर से खूब हृष्ट-पुष्ट कसरती जवान है। मगर खानदान अच्छा नहीं, कोई कहता है, मां नाइन थी, कोई कहता है, ठकुराइन थी। बाप किसी रियासत में मुख्तार थे। घर पर थोड़ी सी जमींदारी है, मगर उस पर कई हजार का कर्ज है। वहां कुछ लेना-देना न पड़ेगा। उम्र कोई बीस साल होगी।

कल्याणी - खानदान में दाग न होता, तो मंजूर कर लेती। देखकर तो मक्खी नहीं निगली जाती।

मोटे - तीसरी नकल देखिए। एक जमींदार का लड़का है, कोई एक हजार सालाना नफा है। कुछ खेती-बारी भी होती है। लड़का पढ़-लिखा तो थोड़ा ही है, कचहरी-अदालत के काम में चतुर है। दुहाजू है, पहली स्त्री को मरे दो साल हुए। उससे कोई संतान नहीं, लेकिन रहना-सहन, मोटा है। पीसना-कूटना घर ही में होता है।

कल्याणी - कुछ दहेज मांगते हैं?

मोटे - इसकी कुछ न पूछिए। चार हजार सुनाते हैं। अच्छा यह चौथी नकल दिये। लड़का वकील है, उम्र कोई पैंतीस साल होगी। तीन-चार सौ की आमदनी है। पहली स्त्री मर चुकी है उससे तीन लड़के भी हैं। अपना घर बनवाया है। कुछ जायदाद भी खरीदी है। यहां भी लेन-देन का झगड़ा नहीं है।

कल्याणी - खानदान कैसा है?

मोटे - बहुत ही उत्तम, पुराने रईस हैं। अच्छा, यह पांचवीं नकल दिए। बाप का छापाखाना है। लड़का पढ़ा तो बी. ए. तक है, पर उस छापेखाने में काम करता है। उम्र अठारह साल की होगी। घर में प्रेस के सिवाय कोई जायदाद नहीं है, मगर किसी का कर्ज सिर पर नहीं। खानदान न बहुत अच्छा है, न बुरा।

लड़का बहुत सुन्दर और सच्चरित्र है। मगर एक हजार से कम में मामला तय न होगा, मांगते तो वह तीन हजार हैं। अब बताइए, आप कौन-सा वर पसन्द करती हैं?

कल्याणी - आपको सबों में कौन पसन्द है?

मोटे - मुझे तो दो वर पसन्द हैं। एक वह जो रेलवर्ड में है और दूसरा जो छापेखाने में काम करता है।

कल्याणी - मगर पहले के तो खानदान में आप दोष बताते हैं?

मोटे - हां, यह दोष तो है। छापेखाने वाले को ही रहने दीजिये।

कल्याणी - यहां एक हजार देने को कहां से आयेगा? एक हजार तो आपका अनुमान है, शायद वह और मुंह फैलाये। आप तो इस घर की दशा देख ही रहे हैं, भोजन मिलता जाये, यही गनीमत है। रुपये कहां से आयेंगे? जमींदार साहब चार हजार सुनाते हैं, डाक बाबू भी दो हजार का सवाल करते हैं। इनको जाने दीजिए। बस, वकील साहब ही बच सकते हैं। पैंतीस साल की उम्र भी कोई ज्यादा नहीं। इन्हीं को क्यों न रखिए।

मोटेराम - आप खूब सोच-विचार लें। मैं यों आपकी मर्जी का ताबेदार हूं। जहां कहिएगा वहां जाकर टीका कर आऊंगा। मगर हजार का मुंह न देखिए, छापेखाने वाला लड़का रत्न है। उसके साथ कन्या का जीवन सफल हो जाएगा। जैसी यह रूप और गुण की पूरी है, वैसा ही लड़का भी सुन्दर और सुशील है।

कल्याणी - पसन्द तो मुझे भी यही है महाराज, पर रुपये किसके घर से आयें! कौन देने वाला है! है कोई दानी? खानेवाले खा-पीकर चंपत हुए। अब किसी की भी सूरत नहीं दिखाई देती, बल्कि और मुझसे बुरा मानते हैं कि हमें निकाल दिया। जो बात अपने बस के बाहर है, उसके लिए हाथ ही क्यों फैलाऊं? सन्तान किसको प्यारी नहीं होती? कौन उसे सुखी नहीं देखना चाहता? पर जब अपना काबू भी हो। आप ईश्वर का नाम

लेकर वकील साहब को टीका कर आइये। आयु कुछ अधिक है, लेकिन मरना-जीना विधि के हाथ है। पैंतीस साल का आदमी बुढ़ा नहीं कहलाता। अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा है, तो जहां जायेगी सुखी रहेगी, दुःख भोगना है, तो जहां जायेगी दुःख झेलेगी। हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है। उनके बच्चों को अपना समझेगी। आप शुभ मुहूर्त देखकर टीका कर आयें।

निर्मला का विवाह हो गया। ससुराल आ गयी। वकील साहब का नाम था मुंशी तोताराम। सांवले रंग के मोटे-ताजे आदमी थे। उम्र तो अभी चालीस से अधिक न थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर के बाल पका दिये थे। व्यायाम करने का उन्हें अवकाश न मिलता था। वहां तक कि कभी कहीं घूमने भी न जाते, इसलिए तौंद निकल आई थी। देह के स्थूँन होते हुए भी आये दिन कोई-न-कोई शिकायत रहती थी। मंदग्नि और बवासीर से तो उनका चिरस्थायी सम्बन्ध था। अतएव बहुत फूंक-फूंककर कदम रखते थे। उनके तीन लड़के थे। बड़ा मंसाराम सोहल वर्ष का था, मंझला जियाराम बारह और सियाराम सात वर्ष का। तीनों अंग्रेजी पढ़ते थे। घर में वकील साहब की विधवा बहिन के सिवा और कोई औरत न थी। वही घर की मालकिन थी। उनका नाम था रुक्मिणी और अवस्था पचास के ऊपर थी। ससुराल में कोई न था। स्थायी रीति से यहीं रहती थीं।

तोताराम दम्पति-विज्ञान में कुशल थे। निर्मला के प्रसन्न रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी, उसे वह उपहारों से पूरी करना चाहते थे। यद्यपि वह बहु ही मितव्ययी पुरुष थे, पर निर्मला के लिए कोई-न-कोई तोहफा रोज लाया करते। मौके पर धन की परवाह न करते थे। लड़के के लिए थोड़ा दूध आता था, पर निर्मला के लिए मेवे, मुरब्बे, मिठाइयां-किसी चीज की कमी न थी। अपनी जिन्दगी में कभी सैर-तमाशे देखने न गये थे, पर अब छुट्टियों में निर्मला को सिनेमा, सरकस, एटर, दिखाने ले जाते थे। अपने बहुमूल्य समय का थोड़ा-सा हिस्सा उसके साथ बैठकर ग्रामोफोन बजाने में व्यतीत किया करते थे।

लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हंसने-बोलने में संकोच होता था। इसका कदाचित् यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर-झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी, अब उनकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।

वकील साहब को नके दम्पत्ति-विज्ञान न सिखाया था कि युवती के सामने खूब प्रेम की बातें करनी चाहिये। दिल निकालकर रख देना चाहिये, यही उसके वशीकरण का मुख्य मंत्र है। इसलिए वकील साहब अपने प्रेम-प्रदर्शन में कोई कसर न रखते थे, लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उनका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुंह से निकलकर उसके हृदय पर शर के समान आघात करती थीं। उनमें रस न था उल्लास न था, उन्माद न था, हृदय न था, केवल बनावट थी, घोखा था और शुष्क, नीरस शब्दाडम्बर। उसे इत्र और तेल बुरा न लगता, सैर-तमाशे बुरे न लगते, बनाव-सिंगार भी बुरा न लगता था, बुरा लगता था, तो केवल तोताराम के पास बैठना। वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखाना चाहती थी, क्योंकि वहां देखने वाली आंखें न थीं। वह उन्हें इन रसों का आस्वादन लेने योग्य न समझती थी। कली प्रभात-समीर ही के सपर्श से खिलती है। दोनों में समान सारस्य है। निर्मला के लिए वह प्रभात समीर कहां था?

पहला महीना गुजरते ही तोताराम ने निर्मला को अपना खजांची बना लिया। कचहरी से आकर दिन-भर की कमाई उसे दे देते। उनका ख्याल था कि निर्मला इन रूपयों को देखकर फूली न समाएगी। निर्मला बड़े शौक से इस पद का काम अंजाम देती। एक-एक पैसे का हिसाब लिखती, अगर कभी रुपये कम मिलते, तो पूछती आज कम क्यों हैं। गृहस्थी के सम्बन्ध में उनसे खूब बातें करती। इन्हीं बातों के लायक वह उनको समझती थी। ज्योंही कोई विनोद की बात उनके मुंह से निकल जाती, उसका मुख लिन हो जाता था।

निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौन्दर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती, तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वाला-सी उठती। मन में आता इस घर में आग लगा दूं। अपनी माता पर क्रोध आता, पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध तोताराम पर आता। वह सदैव इस ताप से जला करती। बांका सवार लट्टू-टट्टू पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े? निर्मला की दशा उसी बांके सवार की-सी थी। वह उस पर सवार होकर उड़ना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्यत् गति का आनन्द उठाना चाहती थी, टट्टू के हिनहिनाने और कनौतियां खड़ी

करने से क्या आशा होती? संभव था कि बच्चों के साथ हंसने-खेलने से वह अपनी दशा को थोड़ी देर के लिए भूल जाती, कुछ मन हरा हो जाता, लेकिन रुकमिणी देवी लड़कों को उसके पास फटकने तक न देतीं, मानो वह कोई पिशाचिनी है, जो उन्हें निगल जायेगी। रुकमिणी देवी का स्वभाव सारे संसार से निराला था, यह पता लगाना कठिन था कि वह किस बात से खुश होती थीं और किस बात से नाराज। एक बार जिस बात से खुश हो जाती थीं, दूसरी बार उसी बात से जल जाती थी। अगर निर्मला अपने कमरे में बैठी रहती, तो कहतीं कि न जाने कहां की मनहूसिन है! अगर वह कोठे पर चढ़ जाती या महारियों से बातें करती, तो छाती पीटने लगतीं-न लाज है, न शरम, निगोड़ी ने हया भून खाई! अब क्या कुछ दिनों में बाजार में नाचेगी! जब से वकील साहब ने निर्मला के हाथ में रुपये-पैसे देने शुरू किये, रुकमिणी उसकी आलोचना करने पर आरुढ़ हो गयी। उन्हें मालूम होता था कि अब प्रलय होने में बहुत थोड़ी कसर रह गयी है। लड़कों को बार-बार पैसों की जरूरत पड़ती। जब तक खुद स्वामिनी थीं, उन्हें बहला दिया करती थीं। अब सीधे निर्मला के पास भेज देतीं। निर्मला को लड़कों के चटोरापन अच्छा न लगता था। कभी-कभी पैसे देने से इन्कार कर देती। रुकमिणी को अपने वाग्बाण सर करने का अवसर मिल जाता-अब तो मालकिन हुई है, लड़के काहे को जियेंगे। बिना मां के बच्चे को कौन पूछे? रुपयों की मिठाइयां खा जाते थे, अब धेले-धेले को तरसते हैं। निर्मला अगर चिढ़कर किसी दिन बिना कुछ पूछे-ताछे पैसे दे देती, तो देवीजी उसकी दूसरी ही आलोचना करतीं-इन्हें क्या, लड़के मरे या जियें, इनकी बला से, मां के बिना कौन समझाये कि बेटा, बहुत मिठाइयां मत खाओ। आयी-गयी तो मेरे सिर जायेगी, इन्हें क्या? यहीं तक होता, तो निर्मला शायद जब्त कर जाती, पर देवीजी तो खुफिया पुलिस से सिपाही की भांति निर्मला का पीछा करती रहती थीं। अगर वह कोठे पर खड़ी है, तो अवश्य ही किसी पर निगाह डाल रही होगी, महरी से बातें करती है, तो अवश्य ही उनकी निन्दा करती होगी। बाजार से कुछ मंगवाती है, तो अवश्य कोई विलास वस्तु होगी। यह बराबर उसके पत्र पढ़ने की चेष्टा किया करती। छिप-छिपकर बातें सुना करती। निर्मला उनकी दोधरी तलवार से कांपती रहती थी। यहां तक कि उसने एक दिन पति से कहा-आप जरा जीजी को समझा दीजिए, क्यों मेरे पीछे पड़ रहती हैं?

तोताराम ने तेज होकर कह- तुम्हें कुछ कहा है, क्या?

‘रोज ही कहती हैं। बात मुंह से निकालना मुश्किल है। अगर उन्हें इस बात की जलन हो कि यह मालकिन क्यों बनी हुई है, तो आप उन्हीं को रुपये-पैसे दीजिये, मुझे न चाहिये, यही मालकिन बनी रहें। मैं तो केवल इतना चाहती हूँ कि कोई मुझे ताने-मेहने न दिया करे।’

यह कहते-कहते निर्मला की आंखों से आंसू बहने लगे। तोताराम को अपना प्रेम दिखाने का यह बहुत ही अच्छा मौका मिला। बोले-मैं आज ही उनकी खबर लूंगा। साफ कह दूंगा, मुंह बन्द करके रहना है, तो रहो, नहीं तो अपनी राह लो। इस घर की स्वामिनी वह नहीं है, तुम हो। वह केवल तुम्हारी सहायता के लिए हैं। अगर सहायता करने के बदले तुम्हें दिक करती हैं, तो उनके यहां रहने की जरूरत नहीं। मैंने सोचा था कि विधवा हैं, अनाथ हैं, पाव भर आटा खायेंगी, पड़ी रहेंगी। जब और नौकर-चाकर खा रहे हैं, तो वह तो अपनी बहिन ही है। लड़कों की देखभाल के लिए एक औरत की जरूरत भी थी, रख लिया, लेकिन इसके यह माने नहीं कि वह तुम्हारे ऊपर शासन करें।

निर्मला ने फिर कहा-लड़कों को सिखा देती हैं कि जाकर मां से पैसे मांगे, कभी कुछ-कभी कुछ। लड़के आकर मेरी जान खाते हैं। घड़ी भर लेटना मुश्किल हो जाता है। डांटती हूँ, तो वह आखें लाल-पीली करके दौड़ती हैं। मुझे समझती हैं कि लड़कों को देखकर जलती है। ईश्वर जानते होंगे कि मैं बच्चों को कितना प्यार करती हूँ। आखिर मेरे ही बच्चे तो हैं। मुझे उनसे क्यों जलन होने लगी?

तोताराम क्रोध से कांप उठे। बोले - तुम्हें जो लड़का दिक करे, उसे पीट दिया करो। मैं भी देखता हूँ कि लौंडे शरीर हो गये हैं। मंसाराम को तो मैं बोर्डिंग हाउस में भेज दूंगा। बाकी दोनों को तो आज ही ठीक किये देता हूँ।

उस वक्त तोताराम कचहरी जा रहे थे, डांट-डपट करने का मौका न था, लेकिन कचहरी से लौटते ही उन्होंने घर में रुक्मिणी से कहा - क्यों बहिन, तुम्हें इस घर में रहना है या नहीं? अगर रहना है, शान्त होकर रहो। यह क्या कि दूसरों का रहना मुश्किल कर दो।

रुक्मिणी समझ गयीं कि बहू ने अपना वार किया, पर वह दबने वाली औरत न थीं। एक तो उम्र में बड़ी तिस पर इसी घर की सेवा में जिन्दगी काट दी थी। किसकी मजाल थी कि उन्हें बेदखल कर दे! उन्हें भाई की इस क्षुद्रता पर आश्चर्य हुआ। बोलें - तो क्या लौंडी बनाकर रखेंगे? लौंडी बनकर रहना है, तो इस घर की लौंडी न बनूंगी। अगर तुम्हारी यह इच्छा हो कि घर में कोई आग लगा दे और मैं खड़ी देखा करूं, किसी को बेराह चलते देखूं; तो चुप साध लूं, जो जिसके मन में आये करे, मैं मिट्टी की देवी बनी रहूं, तो यह मुझसे न होगा। यह हुआ क्या, जो तुम इतना आपसे बाहर हो रहे हो? निकल गयी सारी बुद्धिमानी, कल की लौंडिया चोटी पकड़कर नचाने लगी? कुछ पूछना न ताछना, बस, उसने तार खींचा और तुम काठ के सिपाही की तरह तलवार निकालकर खड़े हो गये।

तोता - सुनता हूं, कि तुम हमेशा खुचर निकालती रहती हो, बात-बात पर ताने देती हो। अगर कुछ सीख देनी हो, तो उसे प्यार से, मीठे शब्दों में देनी चाहिये। तानों से सीख मिलने के बदले उलटा और जी जलने लगता है।

रुक्मिणी - तो तुम्हारी यह मर्जी है कि किसी बात में न बोलूं, यही सही, किन फिर यह न कहना, कि तुम घर में बैठी थीं, क्यों नहीं सलाह दी। जब मेरी बातें जहर लगती हैं, तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो बोलूं? मसल है - 'नाटों खेती, बहुरियाँ घर।' मैं भी देखूं, बहुरिया कैसे कर चलाती है!

इतने में सियाराम और जियाराम स्कूल से आ गये। आते ही आते दोनों बुआजी के पास जाकर खाने को मांगने लगे।

रुक्मिणी ने कहा - जाकर अपनी नयी अम्मा से क्यों नहीं मांगते, मुझे बोलने का हुक्म नहीं है।

तोता - अगर तुम लोगों ने उस घर में कदम रखा, तो टांग तोड़ दूंगा। बदमाशी पर कमर बांधी है।

जियाराम जरा शोख था। बोला - उनको तो आप कुछ नहीं कहते, हमीं को धमकाते हैं। कभी पैसे नहीं देतीं।

सियाराम ने इस कथन का अनुमोदन किया - कहती हैं, मुझे दिक करोगे तो कान काट लूंगी। कहती है कि नहीं जिया?

निर्मला अपने कमरे से बोली - मैंने कब कहा था कि तुम्हारे कान काट लूंगी अभी से झूठ बोलने लगे?

इतना सुनना था कि तोताराम ने सियाराम के दोनों कान पकड़कर उठा लिया। लड़का जोर से चीख मारकर रोने लगा।

रुक्मिणी ने दौड़कर बच्चे को मुंशीजी के हाथ से छुड़ा लिया और बोली - बस, रहने भी दो, क्या बच्चे को मार डालोगे? हाय-हाय! कान लाल हो गया। सच कहा है, नयी बीवी पाकर आदमी अन्धा हो जाता है। अभी से यह हाल है, तो इस घर के भगवान ही मालिक हैं।

निर्मला अपनी विजय पर मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी, लेकिन जब मुंशी जी ने बच्चे का कान पकड़कर उठा लिया, तो उससे न रहा गया। छुड़ाने को दौड़ी, पर रुक्मिणी पहले ही पहुंच गयी थीं। बोली - पहले आग लगा दी, अब बुझाने दौड़ी हो। जब अपने लड़के होंगे, तब आंखें खुलेंगी। पराई पीर क्या जानो?

निर्मला - खड़े तो हैं, पूछ लो न, मैंने क्या आग लगा दी? मैंने इतना ही कहा था कि लड़के मुझे पैसों के लिए बार-बार दिक करते हैं, इसके सिवाय जो मेरे मुंह से कुछ निकला हो, तो मेरे आंखें फूट जायें।

तोता - मैं खुद इन लौंडों की शरारत देखा करता हूं, अन्धा थोड़े ही हूं। तीनों जिद्दी और शरीर हो गये हैं। बड़े मियां को तो मैं आज ही होस्टल में भेजता हूं।

रुक्मिणी - अब तक तुम्हें इनकी कोई शरारत न सूझी थी, आज आंखें क्यों इतनी तेज हो गयीं?

तोताराम - तुम्हीं न इन्हें इतना शोख कर रखा है।

रुकमिणी - तो मैं ही विष की गांठ हूँ। मेरे ही कारण तुम्हारा घर चौपट हो रहा है। लो मैं जाती हूँ, तुम्हारे लड़के हैं, मारो चाहे काटो, न बोलूंगी।

यह कहकर वह वहां से चली गयीं। निर्मला बच्चे को रोते देखकर विह्वल हो उठी। उसने उसे छाती से लगा लिया और गोद में लिए हुए अपने कमरे में लाकर उसे चुमकारने लगी, लेकिन बालक और भी सिसक-सिसक कर रोने लगा। उसका अबोध हृदय इस प्यार में वह मातृ-स्नेह न पाता था, जिससे दैव ने उसे वंचित कर दिया था। यह वात्सल्य न था, केवल दया थी। यह वह वस्तु थी, जिस पर उसका कोई अधिकार न था, जो केवल भिक्षा के रूप में उसे दी जा रही थी। पिता ने पहले भी दो-एक बार मारा था, जब उसकी मां जीवित थी, लेकिन तब उसकी मां उसे छाती से लगाकर रोती न थी। वह अप्रसन्न होकर उससे बोलना छोड़ देती, यहां तक कि वह स्वयं थोड़ी ही देर के बाद कुछ भूलकर फिर माता के पास दौड़ा जाता था। शरारत के लिए सजा पाना तो उसकी समझ में आता था, लेकिन मार खाने पार चुमकारा जाना उसकी समझ में न आता था। मातृ-प्रेम में कठोरता होती थी, लेकिन मृदुलता से मिली हुई। इस प्रेम में करुणा थी, पर वह कठोरता न थी, जो आत्मीयता का गुप्त संदेश है। स्वस्थ अंग की पारवाह कौन करता है? लेकिन वही अंग जब किसी वेदना से टपकने लगता है, तो उसे ठेस और घक्के से बचाने का यत्न किया जाता है। निर्मला का करुण रोदन बालक को उसके अनाथ होने की सूचना दे रहा था। वह बड़ी देर तक निर्मला की गोद में बैठा रोता रहा और रोते-रोते सो गया। निर्मला ने उसे चारपाई पर सुलाना चाहा, तो बालक ने सुषुप्तावस्था में अपनी दोनों कोमल बांहें उसकी गर्दन में डाल दीं और ऐसा चिपट गया, मानो नीचे कोई गढ़ा हो। शंका और भय से उसका मुख विकृत हो गया। निर्मला ने फिर बालक को गोद में उठा लिया, चारपाई पर न सुला सकी। इस समय बालक को गोद में लिये हुए उसे वह तुष्टि हो रही थी, जो अब तक कभी न हुई थी, आज पहली बार उसे आत्मवेदना हुई, जिसके ना आंख नहीं खुलती, अपना कर्तव्य-मार्ग नहीं समझता। वह मार्ग अब दिखायी देने लगा।
